बिश्नोई लोकगीत
एक सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ. बनवारी लाल सहू

विकास प्रकाशन
बीकानेर

ISBN . 181-902398-6-61

प्रकाशक : विकास प्रकाशन
4, चौधरी क्वार्टर्स, स्टेडियम रोड़,
बीकानेर, फोन-2541508
संस्करण : 2005
मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपये मात्र
सज-सज्ज : जोशी प्रिन्टर्स,
गुड़ मण्डी, हनुमानगढ़ टाउन, फोन 223188
मुद्रक : कल्याणी प्रिन्टर्स, अलखसागर, बीकानेर

BISHNOI LOK GEET *Ak Sansknlick Mulyankan* Rs 125/-
- By Dr Banwari Lal Sahu

अनुक्रमणिका

भूमिका

पद्मश्री डा. लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत

भूमिका

पाश्चात्य देशों के विद्वान जन जीवन और लोक साहित्य के शोध कार्य में लगभग दो सौ वर्षों से बड़ी रुचि ले रहे हैं। हम देखते हैं कि प्रति वर्ष शोधार्थियों का अलग-अलग पहलुओं पर शोध करने के लिए राजस्थान मे आवागमन बना ही रहता है। राजस्थान में लोक साहित्य और लोक गीत प्रचुर मात्रा में बिखरे पड़े हैं। राजस्थान में सबसे पहले बीकानेर में सूर्यकरण जी पारीक और नारोत्तम दास जी स्वामी ने इनके संकलन करने का श्री गणेश किया। उसके बाद कई विद्वानों ने इस क्षेत्र में रुचि लेकर इस कार्य को किया। अब तो लोकगीतों के संकलन और संपादित अनेक पुस्तकें प्राकशित हो चुकी हैं। विभिन्न क्षेत्रों के और विभिन्न जातियों में प्रचारित लोकगीतों पर भी कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक 'बिश्नोई लोक गीत एक सांस्कृतिक मूल्यांकन' इसकी एक कड़ी है।

विद्वान लेखक डॉ. बनवारी लाल जी सहू ने बिलकुल सही कहा है 'स्वाभाविकता, सरलता एवम् मार्मिकता के कारण ही लोक साहित्य हमारे मर्म को जितना स्पर्श करता है, उतना शिष्ट साहित्य नहीं करता।'

लोक साहित्य में भी लोक गीतों में ज्यादा स्वाभाविकता रहती है और अन्तर्मन की भावना की अभिव्यक्ति विशेष तौर से होती है। कारण स्पष्ट है, लोकगीत की उत्पत्ति होती है - सुख दु:ख के अन्तस में उमड़ी भावनाओं से। इनका सृजन सोच विचार कर नहीं किया जाता। लोकगीत अधिकांश नारी के मन की दबी हुई भावनाओं का विस्फोट है। ये वेदना, उल्लास, अरमान, फरमाईश और आरजू आदि शब्दों का रूप लेकर लय में ढल जाते हैं। जो घूंघट में छिपाये हुए मुंह से नहीं बोल सकती, उसे वह गा गा कर सुना देती है। डंके की चोट पर मन का उद्वेग हलका कर लेती हैं।

लोक गीतों में घर-गृहस्थी, सन्तान, पारिवारिक सौहार्द, ईर्ष्या, द्वेष, वेदना और उल्लास का सही चित्रण होता है। समाज का, रहन-सहन का, खान पान का, रीति रिवाज का एक दर्पण होता है लोक गीत, जिसमें छिपाव नहीं होता, अतिश्योक्ति नहीं होती, वह किसी पहलू पर पर्दा नहीं डालता, उसमें स्पष्टता होती है। "बिश्नोई लोकगीत" भी इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। बिश्नोई हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही एक संप्रदाय है। राजस्थान में यह संप्रदाय मरुस्थल में बीकानेर और जोधपुर राज्यों के इलाकों में ही बसा हुआ है। इनके अपने उनतीस नियम हैं। अहिंसा और हरे वृक्ष की रक्षा करने पर विशेष तौर से बल दिया है। नशीले पदार्थों के सेवन पर भी रोक है। ये तंमाखू तक नहीं पीते। वन्य पशुओं की रक्षा करने में तो सदा तत्पर रहते हैं। बिश्नोइयों के गांवों के पास हरिणों के झुण्ड के झुण्ड निर्भय विचरण करते देखने को मिलते हैं। हरे वृक्षों की रक्षा के लिये

खेजड़ली बलिदान तो विख्यात है। 363 बिश्नोई नर नारियों ने वृक्षों की रक्षा हेतु प्राण होम दिये थे।

बिश्नोई लोकगीतों में स्थान-स्थान पर वृक्षों के प्रति उनकी आस्था, प्रेम और सम्मान दृष्टिगोचर होता है। विवाह-शादी, जन्म, मृत्यु आदि अवसरों पर वृक्ष की टहनियों का सम्मान के साथ उपयोग किया जाता है। बोरटी की डाली से तोरण बाना जाता है, खेजड़ी की टहनियों से तोरण बनाना आदि रस्में विवाह का अनिवार्य अंग है। बिश्नोई एक कृषक कौम है। प्रकृति के निकट होना स्वाभाविक है। वन, वन्यजीव, वृक्ष, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी ही इनके संबंधी हैं। खेती, खेती से उपज के धान, मोठ, बाजरी, घी-दूध ही इनकी संपत्ति है। गाय, बैल, ऊंट, आदि ही इनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। कृषि भूमि ही इनका आधार है। कृषि भूमि ही इनका खजाना है।

अपनी मनो भावना लोकगीतों में कितनी सरलता से प्रकट होती है। गांव के मालिक जागीरदार ही भूमि के स्वामी रहे हैं। किसान को भूमि देना उनके अधिकार में रहा है।

गांवधणी आगे साहिबा अरज करोनी
दो बीघा धरती देरायो गाडा मारूजी"

पत्नी कहती है "गाडा मारूजी (प्रिय) गांव के स्वामी से जाकर अरज करो, दो बीघा जमीन प्रदान करने की।

लोक गीतों की उपमायें भी अपने चारों ओर फैले हुए वातावरण का ही अंग होती हैं। देवर-भाभी की मीठी नोक-झोंक भी बड़ी मजेदार है। भावज पीठी लगाकर पूछती है।

तूं तो धोळो रे रायजादा बनड़ा किसोड़े गुणां ?
म्हारी माता जी नुहायो ओ राज, चांदी करे रूंख तळे।

तुम तो गोरे-गोरे हो। इतने गोरे कैसे हो ? देवर जवाब देता है, मेरी माता ने चांदी के पेड़ तले मुझ नहलाया था इसलिए।

भाभी मजाक करती है –
तूं तो काळो रायजादा बनड़ा किसोड़े गुणें ?
म्हारी भावजड़ी नुहायो राज, सुरमे के रे रूंख तळै।

देवर नहले पर दहला मारते हुए जबाव देता है ' मेरी भावज ने मुझे सुरमे के पेड़ तलै नहलाया इसलिए।

विवाह आदि के अवसरों पर सगे-सम्बन्धियों के साथ मीठी मजाक के गीत गाये जाते हैं, इन्हें गालियां कहा जाता है। इनमें विनोद भरी चुटकियां होती हैं। इन्हें सुनकर कोई नाराज नहीं होता।

इस प्रकार की शिष्ट गालियां गाने का रिवाज सभी वर्गों और जातियों में होता है। सामाजिक तानो-बानो का जानकार इन गालियों को

सुनकर अन्दाज लगा सकता है कि ये मीठी मजाक और इस प्रकार का विनोद ग्रामीण जगत का है या शहरी समाज का। यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि यह विनोद किस व्यवसाय या वर्ग का हो सकता है। हास्य विनोद से पूर्ण एक लोकगीत की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :-

म्हारै हरखे बनड़ो परणीजै, म्हारै कौडे बनड़ो परणीजै
म्हारै रे बनड़े गै भदवाणै में, नगरी में बाजा बाजे जी।
रामू चढग्यो डागलै, कांदा रोटी खावै जी
रामू की गोरडी छाछली, गधा चरावण जावै जी
गधे ठोकी लात गी, सात गळैटा खावै जी।।

लोक साहित्य में बारहमासा का अपना विशिष्ट स्थान है। केवल लोकगीतों में ही नहीं, भजनों और हरजस में भी बारह मासा उतना ही प्रचलित है। भजनों और हरजस में अधिकतर राधा-कृष्ण, गोपिकाएँ नायक और नायिका के स्थान में प्रतिष्ठित रहती है। बारहमासा की एक दीर्घ परंपरा है। हिन्दी साहित्य में भी उसका बड़ा उंचा स्थान है। हिन्दी के अनेक कवियों ने अपने काव्य में बारह मासा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रख्यात कवि जायसी ने भी नागमति का विरह वर्णन बारहमासा में ही किया है।

बारहमासा का मतलब होता है वर्ष भर के बारह महिनों की प्राकृतिक स्थिति, विशेषता का चित्रण करना। प्रत्येक महिने का वर्णन करना। देखने में यही आया है कि बारहमासों में अधिकांश तौर पर वियोग या विरह का वर्णन होता है। बारहमासे केवल काव्य, साहित्य और संगीत में ही नहीं होते, चित्र कला में भी बारहमासों पर आधारित उच्चकोटि के चित्र हैं। इसी भांति राग-रागनियों पर आधारित चित्र होते हैं। पुराने राजघरानो में ये चित्रित बारहमासा उनके जोतदान की शोभा बढ़ाते थे। चित्रों के संग्रहों को जोतदान (ज्योतिदान) कहा जाता है। मुझे विभिन्न चित्रकारों की तूलिका से चित्रित बारहमासा के अनेक जोतदान अर्थात् एलबम देखने को मिले हैं, जिनमें जेठ महिने की भयंकर गर्मी, सावन की घटा की मनोहर छवि, शरद पूर्णिमा की शरद चांदनी एवं रात की भव्य शोभा दर्शित है। इन चित्रों में विरह चित्रण काफी मात्रा में है। बिश्नोई लोकगीतों में मुझे एक बड़ा अनूठापन दिखाई दिया जो अन्यत्र नहीं है। यह बारहमासा कल्पना पर नहीं, भावुकता से नहीं, वास्तविकता और ठोस आधार वाला है। बिश्नोई समाज के सांसों की धड़कन है, कृषि की कार्यशाला है और प्रतिदिन के जीवन की दिनचर्या है। प्राकृतिक चित्रण है। आषाढ़ मास वर्षा ऋतु का प्रथम मास है।

आषाढ रो ओ बीरा दूजोड़ो मास जै ओ।
हाळी हळ ओ बीरा जोड़िया जै ओ।
सावणिये रो ओ बीरा तीजोड़ो मास जै ओ।
धोरे धामण ओ बीरा मोकळा जै ओ

यह आपाढ़ मास है। कृषकों ने हल जोड़ लिये है। खेतो में बुवाई हो रही है। यह सावन का महिना आ गया। रेतीले धोरों पर "धामण" घास बहुतायत से उग आई है। धामण घास से सूखे धोरों पर हरियाली छा गई है। भादों का महिना, घी दूध की नदियां बहती हैं। बिलौवणों की धमक से घर गूंज उठे हैं।

यह आसोज का महिना आ गया। लताएँ, बैलें फलों से लद गई है। कार्तिक का महिना, बाजरे की फसल भरपूर है। बाजरे के सिट्टे आ रहे हैं। कृषि और पशुपालन ही विश्नोइयों का एक मात्र व्यवसाय रहा है। वर्षा ऋतु ही धन-धान्य और जीवन प्रदान करने वाली ऋतु हैं। आनन्द और उल्लास के साथ गाते बजाते इस का स्वागत क्यों न करें? फसलों की बुवाई, सिंचाई, कटाई के श्रम में उन्हें एक आनन्द और उल्लास की अनुभूति होती है। अन्य बारहमासों की भांति बिश्नोई लोकगीतों के बारहमासा में विरह का रोना नहीं, प्रकृति-प्राप्त कृषि की उपज को देख सुख है, सन्तोष है और है एक आशा का सुखद स्वप्न। इनका *बारहमासा अपना-अलग वैशिष्ट्य रखता है।*

डॉ. बनवारी लाल जी सहू ने विश्नोई लोकगीतों का सांस्कृतिक मूल्यांकन बड़े परिश्रम से किया है। लोक साहित्य के क्षेत्र में डॉ. बनवारीलाल जी सहू वर्षो से काम कर रहे हैं। आपने लोकगीतों के स्वरूप और विशेषताओं पर प्रस्तुत मूल्यांकन में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे पठनीय है। स्थान-स्थान पर मार्मिक विचार और उध्दरण देकर पुस्तक की गरिमा को बढ़ा दिया है। इन लोकगीतों के ऊपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है और लिखा जाना चाहिये भी।

मैं संक्षेप में कुछ पंक्तियां लिखकर डॉ. बनवारीलाल सहू को बधाई देते हुए यह कामना करती हूं कि डॉक्टर साहिब इस विधा पर बराबर कार्य करते रहें और उन्हें सफलता प्राप्त हो।

पद्मश्री डा. लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत
डी.लिट्, (पूर्व सांसद)

लक्ष्मी निवास,
डी-194, बनीपार्क,
जयपुर-302 006 ☏ 205759

दो शब्द

अपनी रागात्मक प्रवृत्ति के कारण लोक साहित्य का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोक साहित्य में मानव संस्कृति अपने यथार्थ एवं सजीव रूप में चित्रित होती है। स्वाभाविकता, सरलता एवं मार्मिकता के कारण ही लोक साहित्य हमारे मर्म को जितना स्पर्श करता है, उतना शिष्ट साहित्य नहीं करता। इसी कारण लोक साहित्य की प्रत्येक विधा हमें अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होती है और हम उससे आनंद विभोर हो जाते हैं। लोक साहित्य में भी सर्वाधिक महत्त्व लोकगीतों का है। लोकगीतों का अस्तित्व तब से है जब से मानव जाति इस संसार में आयी है। लोकगीतों की परम्परा प्रारम्भ में मौखिक रही है। इसी कारण लिपिबद्ध करने से पूर्व अनेक लोकगीत काल के पेट में समाहित हो गये हों, तब भी कोई आश्चर्य नहीं है।

संस्कारों से संस्कृति निर्मित होती है और संस्कृति की समस्त विशेषताएँ लोकगीतों में अभिव्यक्त होती है। इसी कारण हमारे लोकगीत हमारी संस्कृति की अनुपम, अमूल्य एवं स्थायी सम्पदा है। किसी जाति या जनपद की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति जितनी लोकगीतों में होती है, उतनी किसी अन्य विधा में नहीं होती। इसलिये किसी जाति के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिए उस *जाति के लोकगीत प्रामाणिक आधार होते हैं। लोकगीत हमारी संस्कृति के रक्षक* एवं दर्पण है। लोकभावना से सम्बन्धित होने के कारण ही लोकगीतों में लोक मानस को उद्वेलित करने की शक्ति रहती है। एक ओर लोकगीतों से मानव जाति का मनोरंजन होता है तो दूसरी ओर ये मानव जीवन में व्याप्त कड़वाहट को दूर करके मनुष्य को आनंद विभोर कर देते हैं। रीति-रिवाज, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मान्यताओं, भौगोलिक स्थिति एवं भाषा की दृष्टि से विश्व के लोकगीत अलग-अलग हैं पर भावों की दृष्टि से सभी लोकगीत समान हैं। इसी आधार पर लोकगीत मानव जाति को एकता के सूत्र में बांधने के प्रबल साधन हैं।

लोकगीत अत्यधिक मर्मस्पर्शी होते हैं, इसी कारण वे हमें रुचिकर एवं प्रिय लगते हैं और इनको सुनते ही हम आनन्द विभोर हो जाते हैं। इसका प्रमुख कारण है, जन साधारण द्वारा लोक भावना को, लोक भाषा में *अभिव्यक्त करना। लोक भाषा के कारण ही लोकगीत हमें अपने लगते हैं* और इसी कारण वे हमारे मर्म को अधिक स्पर्श करते हैं। लोकगीतों एवम् लोकभाषा की शक्ति असीम है, जिसकी तह तक पहुंचना बड़ा कठिन हैं।

पाश्चात्य देशों में लोक साहित्य के प्रति प्रारम्भ से ही रुचि रही है। इसी कारण पाश्चात्य देशों में लोक साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य हुआ है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म को जानने के उद्देश्य से ही 19वीं शताब्दी में अनेक अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय लोक साहित्य का संग्रह करके उसे प्रकाशित करवाया। मानव जीवन में लोक साहित्य के इस महत्त्व को समझकर ही भारतीय विद्वान 20वीं शताब्दी से इस ओर आकर्षित दिखाई देते हैं और तभी से इस क्षेत्र में कार्य हो रहा है। हिन्दी में रामनरेश त्रिपाठी के ग्रामगीतों के संग्रह के प्रकाशन से लोकगीतों के संग्रह एवं आलोचना का क्रमबद्ध रूप मे कार्य हो रहा है। एक ओर विद्वानों ने क्षेत्रीय आधार पर लोकगीतों का संग्रह किया है, जैसे राजस्थान के लोकगीत (सूर्यकरण पारीक) हरियाणा के लोकगीत (डॉ. भीमसिंह) उत्तर प्रदेश के लोकगीत (सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश) बुन्देल खंड के लोकगीत (शिव सहाय) एवं विन्ध्य प्रदेश के लोकगीत (श्री चंद जैन) आदि इसी तरह के संग्रह हैं। दूसरी ओर लोक साहित्य के विद्वानों ने भाषा के आधार पर भी लोकगीतों का संग्रह किया है जैसे - अवधी लोकगीत (विद्या बिन्दूसिंह) राजस्थानी लोकगीत (सूर्यकरण पारीक) बुन्देली लोकगीत (वासुदेव गोस्वामी) आदि। कुछ विद्वानों ने जाति के आधार पर भी लोकगीतों का संग्रह किया है।

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जाम्भोजी द्वारा बताये गये उनतीस नियमों एवं उनकी शिक्षाओं के कारण बिश्नोई सम्प्रदाय का एक अलग ही वैशिष्ट्य बना हुआ है। हिन्दू धर्म से अभिन्न होकर भी बिश्नोई सम्प्रदाय की अपनी अलग पहचान है। "जीव दया पालणी अर रूंख लीलो नहिं घावै" इन दो नियमों के प्रति सम्प्रदाय की जो अटूट आस्था है, उसके कारण बिश्नोई वन्य जीवों एवं वृक्षों की रक्षा के लिए प्रारम्भ से ही तत्पर रहे हैं। यहां तक कि बिश्नोइयों ने समय-समय पर अपने प्राण न्यौछावर करके भी वन्य जीवों एवं वृक्षों की रक्षा की है। बिश्नोई समाज का इतिहास वन्य जीवों एवं वृक्षों की रक्षार्थ अपने प्राण न्यौछावर करने की घटनाओं से भरा पड़ा है। इसमें सम्वत् 1787 का खेजड़ली बलिदान तो एक ऐसा बलिदान है, जिसमें 363 बिश्नोई स्त्री-पुरुषों ने वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे। वृक्षों की रक्षार्थ प्राण न्यौछावर करने की यह घटना न केवल भारत में अपितु विश्व-इतिहास की एक मात्र घटना है। मातृभूमि, पशु-पक्षियों एवं मानव की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने की घटनाएँ तो विश्व इतिहास में मिलती हैं पर वृक्षों की रक्षा के लिए अहिंसात्मक ढ़ंग से इतनी बड़ी संख्या में प्राण

न्यौछावर करने की घटना केवल विश्नोई जाति के इतिहास में ही देखी जा सकती है। पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते खतरे में इस घटना एवं विश्नोई जाति का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। विश्नोई सम्प्रदाय की यही जीव दया एवं वृक्ष प्रेम की भावना उनके लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई है। इसी कारण विश्नोई लोकगीतों का अपना अलग वैशिष्ट्य है। विश्नोई सम्प्रदाय के रीति-रिवाज, त्यौहार, धार्मिक मान्यताएँ, नियम पालन की दृढ़ता, आचार-विचार, आडम्बरहीनता, लोकहित की भावना, स्वच्छता, करुणा, वीरता, संवेदनशीलता, पहनावा एवं खान-पान आदि की समस्त विशेषताएँ विश्नोई लोकगीतों में देखी जा सकती है। इन्हीं विशिष्ट विशेषताओं के कारण विश्नोई लोकगीतों का अपना-अलग महत्त्व है और यही लोकसाहित्य को विश्नोई लोकगीतों की अमूल्य देन है।

राजस्थान में लोकगीतों के संग्रह एवं लोकगीतों के विवेचनात्मक अध्ययन का जितना कार्य हुआ है, उतना अन्य किसी प्रान्त या बोली में नहीं हुआ है। राजस्थान के इन लोकगीतों में राजस्थान की संस्कृति साकार रूप में चित्रित हुई है। पर वन्य जीवों एवं वृक्षों की रक्षा हेतु प्राण न्यौछावर करने वाले विश्व प्रसिद्ध विश्नोई सम्प्रदाय के लोकगीतों का किसी के द्वारा संग्रह न करना एक आश्चर्य की ही बात है। लोक साहित्य के क्षेत्र में इस अभाव को देखकर मैंने अपने कई वर्षों के परिश्रम से विश्नोई लोकगीतों का संग्रह किया और सन् 1980 में 'विश्नोई लोकगीत' नामक पुस्तक प्रकाशित करवायी, जिसके अब तक तीन संस्करण निकल चुके हैं। इन्हीं लोकगीतों के आधार पर मैंने कुछ वर्ष पूर्व इनका सांस्कृतिक मूल्यांकन करने की योजना बनायी और उसी को मैं आज लोक साहित्य के विद्वानों एवं पाठ्कों के सामने प्रस्तुत करके सुखद अनुभूति कर रहा हूँ। मेरे इस कार्य से लोक साहित्य के पाठकों को यदि थोड़ी सी भी सुखद अनुभूति एवं प्रेरणा प्राप्त होती है, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

इस पुस्तक को लिखने में मैंने विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों का उपयोग किया है, उन सभी विद्वानों के प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। विश्नोई लोकगीतों के भाव सौन्दर्य को समझने के लिए मैंने समय-समय पर अपने अनेक साथियों एवम् विद्वानों से विचार विमर्श किया हैं, उन सभी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

समाज की नारी शक्ति, जिसकी लोकगीत अपनी धरोहर है। उनकी इसी धरोहर द्वारा विश्नोई संस्कृति की रक्षा हुई है और वही धरोहर इस

पुस्तक का प्रमुख आधार है। इसलिए मैं समाज की नारी शक्ति को शत्-शत् नमन करता हूँ।

आदरणीया पद्मश्री डॉ. लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत ने इस पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे जो स्नेह दिया है, इसके लिए उनके प्रति आभार के दो शब्द लिखकर मैं उनके असीम स्नेह से वंचित नहीं होना चाहता।

1/73 प्रोफेसर कॉलोनी,
हनुमानगढ़ टाउन (राज.)

-डॉ. बनवारी लाल सहू

बिश्नोई सम्प्रदाय-एक परिचय

1. जाम्भोजी एवं बिश्नोई सम्प्रदाय

सोहलवीं शताब्दी में उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति बहुत ही डांवाडोल थी। शक्तिशाली शासक के अभाव में देश छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटा हुआ था। वर्तमान राजस्थान भी अनेक राज्यों में विभक्त था। राज्य विस्तार एवं नये राज्य की स्थापना हेतु युद्ध होते ही रहते थे। बाहरी आक्रमण का भय भी हर समय बना रहता था। राज्य का आधार शक्ति होने के कारण सभी राजा अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने में लगे हुए थे। राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना से पूर्व यह क्षेत्र भी कई भागों में बंटा हुआ था। इन भागों की अधिकांश जनता जाट थी। समाज अनेक जातियों में बंटा हुआ था और इन जातियों में ऊंच-नीच की भावना बहुत प्रबल थी। समाज में अनेक कुरीतियां फैली हुई थी और लोग विलासिता के गर्त में डूबे हुए थे। मांस, मदिरा, भांग एवं अफीम आदि का बहुत प्रचलन था। धर्म के नाम पर चमत्कार-प्रदर्शन, पाखण्ड एवं आडम्बर ही प्रचलित थे। जादू-टोने एवं जंत्र-मंत्र पर लोगों का बहुत विश्वास था। धर्म के वास्तविक रूप के लुप्त होने से लोग जीवन के वास्तविक उद्देश्य से भटक गये थे। ऐसी ही विकट परिस्थितियों में सम्वत् 1508 में भादो बदी अष्टमी को नागौर से 50 किलो मीटर उत्तर में पीपासर गांव में बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जाम्भोजी का जन्म हुआ।

जाम्भोजी के पिता का नाम लोहट जी एवं माता का नाम हांसा देवी था। हांसा देवी छापर निवासी मोहकमसिंह भाटी की बेटी थी। लोहट जी पंवार वंशी ठाकुर थे। वे अच्छे कृषक एवं पशुपालक थे। सच्चाई एवं धार्मिक प्रवृत्ति के कारण लोहट जी अपने गांव में बहुत सम्मानित थे। पर सन्तान के अभाव में वे अत्यन्त दुःखी रहते थे। वृद्धावस्था में जब उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ, तब कहीं इस दुःख का अन्त हुआ।

जाम्भोजी ने सात वर्ष बाल-क्रीडा में व्यतीत किये, 27 वर्ष अपने पिता की आज्ञानुसार जंगल में गायें चरायी और 51 वर्ष तक जन कल्याण हेतु

ज्ञान का उपदेश दिया। सांसारिक आयु के 85 वर्ष तीन माह पूर्ण होने पर सम्वत् 1593 के मार्ग शीर्ष बदी नवमी को जाम्भोजी ने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया था।

जन्म से ही जाम्भोजी ने अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था, जिसका वर्णन सम्प्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने किया है। जाम्भोजी का आचरण साधारण बालक के समान नहीं था। वे अधिकतर अपने में ही लीन रहते थे और बहुत कम बोलते थे। बालक की इसी असाधारण स्थिति के कारण ही जाम्भोजी के माता-पिता अत्यधिक चिन्तित रहने लगे। अपनी इसी चिन्ता से मुक्त होने के लिए वे भोपों एवं तांत्रिकों से बालक का उपचार पूछने लगे। बालक के उपचार हेतु ही लोहट जी ने एक बार एक शमशान सेवी तांत्रिक ब्राह्मण को बुलवाया। ब्राह्मण ने बालक के उपचार हेतु अनेक प्रपंच किये पर उसे अपने किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिली। तब जाम्भोजी ने कुएं में से मिट्टी के कच्चे घड़े द्वारा पानी निकाल कर, चौमुखे दीपकों में पानी डालकर उन्हें प्रज्जवलित किया और ब्राह्मण के प्रति प्रथम 'सबद' कहा।

शमशान सेवी तांत्रिक ब्राह्मण के साथ घटित घटना के बाद जाम्भोजी जंगल में पशु चराने लगे। वे रेत के टीले पर बैठकर योग विद्या से पशु चराते थे। पशु चराते समय जाम्भोजी अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों को अपने कार्यों से प्रभावित करते रहे हैं। इसी अवधि में जाम्भोजी ने अपने साथी ग्वालों के कहने पर उधरण कान्हावत की सांढें डाकूओं से छुड़वायी थी और उधरण कान्हावत के चार प्रश्नों के जवाब में उसके प्रति चार सबद कहे थे। इसी काल में पीपासर के कुएं के पास मेड़ते के राव दूदा की भेंट भी जाम्भोजी से हुई थी। वे मेड़ते के खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। प्रार्थना करने पर जाम्भोजी ने उन्हें एक काठ-मूठ की तलवार दी और साथ ही मेड़ता प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। यह घटना सम्वत् 1519 की है। सम्वत् 1526 में जाम्भोजी ने राव जोधा जी को वैरीसाल नगाड़ा दिया था, जिसे बीका जी ने जोधपुर पर चढ़ाई करके प्राप्त किया था। यही नगाड़ा आज बीकानेर के जूनागढ़ में रखा हुआ है। इसी कारण बीकानेर राज घराने में जाम्भोजी का विशेष प्रभाव रहा है। इस तरह की अनेक घटनाएं उनकी प्रसिद्धि फैलाने में सहायक रही हैं।

जाम्भोजी के माता-पिता उनका विवाह करना चाहते थे, पर जाम्भोजी के आजीवन ब्रह्मचारी रहने के संकल्प के कारण वे अपनी इच्छा पूरी न कर सकें। सम्वत् 1540 की चैत सुदी नवमी को लोहटजी एवं इसी सम्वत् में भादो

की पूर्णिमा को हांसा देवी का स्वर्गवास हो गया था। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद जाम्भोजी अपनी सारी सम्पत्ति गरीबों में बांट कर समराथल धोरे पर रहने लगे। जाम्भोजी ने किसी भी पाठशाला में किसी भी गुरु से शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, फिर भी उन्हें सब बातों का ज्ञान था। इसी बात को जाम्भोजी ने अपने एक सबद में स्वीकार किया है।

म्हे सरैं न बैठा सीख न पूछी,
निरति सुरति सां जांणी

सम्वत् 1542 में राजस्थान में भयंकर अकाल पड़ा। समराथळ धोरे पर रहते हुए जाम्भोजी ने अकाल के समय अकालग्रस्त लोगों की अनेक प्रकार से सहायता की और इस क्षेत्र को उजड़ने से बचाया। अकाल पीड़ित लोगों की सहायता करने से जाम्भोजी की प्रसिद्धि और अधिक फैल गई थी। सुकाल होने पर सम्वत् 1542 को ही कार्तिक बदी अष्टमी को जाम्भोजी ने समराथळ धोरे पर कलश की स्थापना करके उनतीस नियमों की आचार संहिता देकर बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया। जाम्भोजी के चाचा पूल्हो जी सर्व प्रथम सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। सम्प्रदाय में दीक्षित होने का कार्य अष्टमी से लेकर अमावस्या तक निरन्तर होता रहा। बाद में भी लोग समय-समय पर इसमें दीक्षित होते रहे हैं। जाति का कोई बन्धन न होने के कारण इस धर्म में सभी जातियों के लोग दीक्षित होते रहे हैं। इसी कारण बिश्नोई सम्प्रदाय का क्षेत्र जाम्भोजी के समय में ही बहुत विस्तृत हो गया था। वर्तमान में इस सम्प्रदाय के लोग भारत वर्ष के लगभग सभी राज्यों एवं विदेशों तक में बसे हुए हैं।

सम्प्रदाय प्रवर्तन करने से जाम्भोजी की प्रसिद्धि और अधिक फैलने लगी। इसी कारण आम जनता के अतिरिक्त अनेक राजा-महाराजा एवं समाज के गणमान्य व्यक्ति उनके सम्पर्क में आने लगे और उनके कहने से लोकहित के कार्यों में रुचि लेने लगे। सिकन्दर लोदी, मुहम्मद खां नागौरी, राव दूदा, जैसलमेर के राजा जैतसी, जोधपुर के राव सांतल एवं मेवाड के राणा सांगा आदि के अतिरिक्त और भी अनेक राजा जाम्भोजी के सम्पर्क में आये थे और उनकी शिक्षाओं से प्रभावित हुए थे।

जाम्भोजी का भ्रमण-क्षेत्र बहुत व्यापक था। समराथळ पर रहते हुए वे दूर-दूर तक भ्रमण किया करते थे। एक सबद में उन्होंने अन्य कई स्थानों के साथ-साथ लंका एवं खुरासान में जाने का उल्लेख भी किया है।

खुरासांण गढ़ लंका भीतरि गूगल खेयौ परठयौ

जाम्भोजी चाहे कहीं भी भ्रमण करते रहे हों, पर उनका स्थायी निवास समराथळ धोरा ही रहा है। यहीं पर रहकर वे 51 वर्ष तक लोगों को जीवन की युक्ति एवं मोक्ष प्राप्ति का उपदेश देते रहे हैं। सम्वत् 1593 की मार्ग शीर्ष बदी नवमी को जाम्भोजी ने अपना भौतिक शरीर लालासर में त्याग दिया था। कहते हैं कि जाम्भोजी ने अपने भौतिक शरीर को त्यागने से पूर्व ही अपने शिष्यों को अपनी समाधि के लिए मुकाम स्थित जाळ एवं खेजड़े को चिह्न स्वरूप बताया था और कहा था कि यहाँ 24 हाथ जमीन खोदने पर शिवजी का धूणा मिलेगा। शिष्यों ने यही किया, 24 हाथ जमीन खोदने पर उन्हें शिवजी का धूणां एवं एक त्रिशूल मिला। वही त्रिशूल आज मन्दिर पर लगा हुआ है। जाम्भोजी द्वारा बताये हुए स्थान पर ही एकादशी के दिन तालवा गांव के पास (वर्तमान मुकाम) में उनके भौतिक शरीर को समाधिस्थ किया गया। सम्वत् 1593 की पोह सुदी दूज, सोमवार को मन्दिर की नींव रखी गई थी और सम्वत् 1597 की चैत सुदी सप्तमु, शुक्रवार को मन्दिर तैयार हो गया। यहीं पर प्रति वर्ष फाल्गुन एवं आसोज की अमावस्या को समाज के मेले लगते हैं।

2. सबदवाणी

जाम्भोजी द्वारा कहे हुए सबदों के संग्रह का नाम "सबदवाणी" है। सबदवाणी का रचना काल सम्वत् 1515 से 1593 तक है। जाम्भोजी द्वारा कहे हुए कुछ मंत्र एवं 123 सबद ही आज उपलब्ध और ये ही "सबदवाणी" में संग्रहित है। "सबदवाणी" में जाम्भोजी ने "जीया ने जुगती अर मुवा ने मुगती" का उपदेश दिया है। संसार में रहते हुए मनुष्य का जीवन सफल हो सके तथा वह मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो जाये, इसके लिए सबदवाणी में करणीय एवं अकरणीय कार्यों का वर्णन किया है। जाम्भोजी ने कर्म को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। अच्छे कर्मों से ही मनुष्य का जीवन सफल हो सकता है। अच्छे कर्म एवं विष्णु को स्मरण करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। इसी आधार पर मनुष्य का सांसारिक जीवन सुखी हो सकता है और वह मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो सकता है। इस तरह मानव मानवीय गुणों से युक्त होकर अपने सांसारिक जीवन में सफल होकर मोक्ष प्राप्त कर सके, यही "सबदवाणी" का मुख्य उद्देश्य है।

"म्हे आपे आप हुआ अपरंपर" तथा "नव अवतार न्यंमो नारायण तें पणि रूप हमारो थीयो" आदि अनेक कथन कहकर जाम्भोजी ने सबदवाणी में "मैं ब्रह्म हूँ" के रूप में अपना परिचय दिया है। इसके साथ ही जाम्भोजी ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस संसार में जो कुछ है, वह उन्हीं के कारण है। इसी आधार पर

वे लोगों को अपने उपदेशों के अनुसार आचरण करने को कहते हैं।

जाम्भोजी ने सबदवाणी में इस बात को स्वीकार किया है कि जब-जब धर्म की हानि होती है और दुष्टों का अत्याचार बढ़ता है, तब-तब भगवान अवतार धारण करते हैं, पर जाम्भोजी ने स्वयं के संसार में आने का एक मौलिक कारण ही बताया है। सत्ययुग में भगवान ने भक्त प्रहलाद के उद्धार हेतु नृसिंह का अवतार धारण किया था। उस समय भक्त प्रहलाद के तेतीस करोड़ अनुयायी थे। इन्हीं तेतीस करोड़ अनुयायियों के उद्धार का वचन भक्त प्रहलाद ने भगवान से मांगा था। भगवान ने चारों युगों में इन जीवों के उद्धार का वचन प्रहलाद को दिया था। इसी वचन के आधार पर पांच करोड़ जीव सत्य युग में प्रहलाद के साथ, सात करोड़ त्रेता युग में राजा हरिश्चन्द्र के साथ एवं नौ करोड़ जीवों का उद्धार द्वापर में युधिष्ठिर के साथ हुआ था और शेष बारह करोड़ जीवों के उद्धार हेतु उन्हें (जाम्भोजी) कलियुग में आना पड़ा।[1]

आज के इस भौतिक युग में, मानव भौतिक साधनों से स्थायी सुख एवं शान्ति प्राप्त करने में असफल होता जा रहा है। निराशा के गर्त में डूबा हुआ आज का मानव दिशाहीन हो रहा है। ऐसे समय में जाम्भोजी की "सबदवाणी" एक दिशा सूचक के रूप में दिखायी दे रही है। सबदवाणी के अत्यधिक महत्त्व के कारण ही अनेक कवियों ने इसे पांचवा वेद माना है। यह भटके हुए लोगों को उनकी मंजिल तक पहुंचाने वाली है। डॉ. माहेश्वरी के शब्दों में "सबदवाणी का मूल सन्देश आज भी उतना ही उपादेय, प्रभावक, मंगलकारी और मानव जीवन को ऊंचा उठाने में समर्थ है, जितना 16वीं शताब्दी में था। मनुष्य को पशु-सामान्य धरातल से उठाकर सही अर्थों में मनुष्य बनाना सबदवाणी का मुख्य सन्देश है, जो आधुनिक परिवेश में भी पूर्णतः सही और लोक कल्याणकारी है।[2]

3. सम्प्रदाय का नामकरण एवं उनतीस नियम

बिश्नोई सम्प्रदाय में उनतीस नियमों का बहुत महत्त्व है। प्रारम्भ से लेकर आज तक इन नियमों का पालन बड़ी दृढ़ता से किया जा रहा है। कुछ लोगों की धारणा है कि जिस समय सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी, उस समय सम्प्रदाय में अधिकांश लोग अनपढ़ थे। अतः वे बीस से अधिक गिनना नहीं जानते थे। इस अशिक्षा के कारण ही उनतीस नियमों को बीस और नौ नियमों के रूप में जानते थे और इसी बीस और नौ के आधार पर यह सम्प्रदाय बिश्नोई कहलाया है। वस्तुत यह धारणा गलत दिखाई देती है। यद्यपि उस समय समाज में अधिकांश लोग अनपढ़ थे, पर सम्प्रदाय का नामकरण तो समाज के द्वारा न होकर स्वयं जाम्भोजी

के द्वारा ही हुआ था। इसके अतिरिक्त जाम्भोजी ने अपने अनेक सबदों में *"विसन-विसन तू भंणि रे प्राणी"* पर जोर देकर विष्णु की उपासना की ही बात कही है। यह तो संयोग की ही बात है कि बिश्नोई सम्प्रदाय में उपास्य देव विष्णु होने के साथ ही उनतीस नियमों का विशेष महत्त्व बना हुआ है, पर सम्प्रदाय का नामकरण उनतीस नियमों के आधार पर न होकर, विष्णु के आधार पर हुआ है। डॉ. माहेश्वरी ने भी विष्णु के उपासक होने के कारण ही बिश्नोई होने की बात को स्वीकार किया है।[3]

पवित्रता, अहिंसा, सदाचार, पर्यावरण संरक्षण एवं उपासना से संबंधित ये उनतीस नियम न केवल बिश्नोई सम्प्रदाय के लिए महत्त्वपूर्ण है, अपितु मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। कोई भी व्यक्ति इन नियमों का पालन करके, इस लोक एवं परलोक के जीवन को सुधार सकता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय के उनतीस नियम इस प्रकार हैं :-

(1) 30 दिन तक जच्चा घर का कोई भी कार्य न करे।
(2) पांच दिन तक रजस्वला स्त्री गृह-कार्य से पृथक रहे।
(3) प्रात:काल स्नान करें।
(4) शील का पालन करें।
(5) सन्तोष धारण करें।
(6) बाहरी एवं आन्तरिक पवित्रता रखें।
(7) प्रात:-सायं सन्ध्या वन्दना करें।
(8) सन्ध्या को आरती एवं हरिगुण-गान करें।
(9) प्रेम पूर्वक हवन करें।
(10) पानी, वाणी, ईंधन एवं दूध को छान कर प्रयोग करें।
(11) क्षमा एवं दया को धारण करें।
(12) चोरी न करें।
(13) निंदा न करें।
(14) झूठ न बोलें।
(15) वाद-विवाद न करें।
(16) अमावस्या को व्रत रखें।
(17) विष्णु का जप करें।
(18) प्राणी मात्र पर दया करें।
(19) हरे वृक्ष न काटें।
(20) काम, मद, लोभ एवं मोह आदि को अपने वश में रखें।

(21) रसोई अपने हाथों से बनायें।
(22) थाट अमर रखें।
(23) बैल को खसी (नपुंसक) न करवायें।
(24) अमल न खावें।
(25) तम्बाकू का सेवन न करें।
(26) भांग न पीवें।
(27) मांस न खावें।
(28) मदिरा न पीवें।
(29) नीले वस्त्र का प्रयोग न करें।

"जीव दया पालणी और रूंख लीलो नहीं घावै" सम्प्रदाय के दो ऐसे नियम हैं, जिनके पालनार्थ बिश्नोई समाज के अनेक लोगों ने अपने प्राण न्यौछावर किये हैं। वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राण न्यौछावर करने के कारण ही बिश्नोई सम्प्रदाय आधुनिक युग में विश्व के आकर्षण का केन्द्र बन गया है। पर्यावरण प्रदूषण के इस युग में वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राणों का बलिदान करने वाला बिश्नोई सम्प्रदाय विश्व गगन मण्डल में आज सूर्य की तरह चमक रहा है।

4. सम्प्रदाय में हवन, पाहळ एवं जम्मे का महत्त्व

बिश्नोई सम्प्रदाय में हवन एवं पाहळ का बहुत महत्त्व है। सम्प्रदाय में हवन एवं पाहळ के बिना कोई भी अनुष्ठान सम्पन्न नहीं होता। हवन करना तो सम्प्रदाय के उनतीस नियमों में से एक नियम है। मुकाम के मेले पर तो कई मन घी का हवन होता है। अमावस्या को तथा किसी विशेष उत्सव के समय बिश्नोई गांवों में सामूहिक हवन होता है, जिसमें एक विशेष लय में सबदवाणी के सभी सबदों का पाठ होता है। सम्प्रदाय के विभिन्न धामों पर नित्य हवन होता है। आज पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते खतरे के समय होम का महत्त्व असंदिग्ध है। आज के वैज्ञानिक भी होम के महत्त्व को स्वीकार कर रहे हैं। बिश्नोई समाज ने सैंकड़ों वर्षों तक हवन की परम्परा को कायम रख कर मानव समाज का अत्यधिक उपकार किया है।

'पाहळ मंत्र' द्वारा शुद्ध किया हुआ जल पाहळ कहलाता है। सर्वप्रथम जब लोग बिश्नोई सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, तो पाहळ ग्रहण करके ही दीक्षित हुए थे। बिश्नोई परिवार में जन्मा बच्चा भी पाहळ ग्रहण करने के बाद ही बिश्नोई कहलाता है। सम्प्रदाय की मान्यता है कि पाहळ द्वारा सभी प्रकार की अपवित्रता नष्ट हो जाती है। सम्प्रदाय के सभी संस्कारों पर पाहळ होता है। पाहळ

पवित्रता, समानता, नियम पालन की दृढ़ता एवं विष्णु की शरण में रहने का प्रतीक है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में जाम्भोजी को विष्णु माना जाता है। इसीलिए उनके कहे हुए सबदों को सबसे अधिक पवित्र एवं प्रामाणिक मानते हैं। जाम्भोजी के सबदों के अतिरिक्त सम्प्रदाय में बिश्नोई कवियों द्वारा रचयित 'साखियों' का भी बहुत महत्त्व है। बिश्नोई कवियों द्वारा रचयित साखियों को 'जांभाणी साखी' कहा जाता है। 'जांभाणी सखियों' में जाम्भोजी के गुणों एवं सिद्धान्तों को चित्रित किया गया है। धार्मिक उत्सवों में सन्त-महात्माओं एवं गायनाचार्यों द्वारा साखियां गायी जाती है।किसी गृहस्थ द्वारा रात्रि में जब साधुओं या गायनाचार्यों द्वारा साखियों के गाने का जो आयोजन किया जाता है, उसे 'जम्मा' या जागरण कहते हैं। जम्मे की परम्परा जाम्भोजी के समय से ही चली आ रही है। जम्मे में कम-से-कम पांच साखियां अवश्य गायी जाती हैं और उनका भवार्थ स्पष्ट किया जाता है। जम्मे को बहुत पवित्र कार्य माना जाता है। इसीलिए प्रत्येक बिश्नोई अपने घर में वर्ष में एक बार अवश्य ही जम्मा लगवाने का प्रयास करता है। कभी-कभी इच्छित फल की प्राप्ति होने पर भी जम्मा लगवाया जाता है। जम्मे के प्रारम्भ में कटोरी में घी डाल कर 'जोत' की जाती है। सम्प्रदाय की मान्यता है कि 'जोत' में गुरु जम्भेश्वर भगवान का निवास है। इसीलिए जम्मे में आने वाला प्रत्येक श्रद्धालु 'जोत' को प्रणाम करता है। अर्द्धरात्रि में आटे के चौमुखे दीपक में 'जोत' की जाती और आरती गायी जाती है तथा श्रोतागणों को गुड़ का प्रसाद बांटा जाता है। जम्मे में आने वाले सभी श्रोतागण अपनी श्रद्धानुसार गायनाचार्य एवं साधुओं को दान देते हैं। प्रातःकाल हवन होता है और सभी सबदों का सामूहिक रूप से पाठ किया जाता है। हवन के समय भी लोग आखा (अनाज) एवं जोत (घी) लेकर आते हैं। हवन के बाद पाहळ किया जाता है और सभी लोगों को पाहळ दिया जाता है।

5. सम्प्रदाय के प्रमुख धाम

बिश्नोई सम्प्रदाय के अनेक धाम हैं। सभी धामों पर समय-समय पर मेले आयोजित होते हैं। सम्प्रदाय के लोग वहां पहुंचकर अपने अराध्य देव की सेवा में श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

पीपासर :- यह नागौर से 45 किलोमीटर उत्तर में और मुकाम से लगभग 15 किलोमीटर दक्षिण में है। यह जाम्भोजी का अवतार स्थल है। जाम्भोजी का बाल्यकाल यहीं व्यतीत हुआ था। जाम्भोजी ने जिस कुएं पर सबदवाणी का प्रथम सवद कहा था, वह कुंआ भी यहां है पर अव बंद पड़ा है। कुएं के पास ही वह

खेजेड़ी का वृक्ष है, जिसकी छाया में जाम्भोजी के पशु विश्राम करते थे और कहते हैं कि इसी खेजड़े के नीचे राव दूदो जी ने अपना घोड़ा बांधा था। यहीं पर जाम्भोजी ने राव दूदो जी को मेड़ता प्राप्ति का आशीर्वाद दिया था। खेजड़े के पास ही जाम्भोजी की साथरी है, जो उनके घर की सीमा में मानी जाती है। आज इस गांव में राजपूत, जाट, ब्राह्मण एवं मेघवालों के घर हैं। विश्नोइयों का कोई घर नहीं है। इस गांव में केवल जाम्भोजी के चाचा पूल्होजी ही बिश्नोई सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और उनके वंशज बाद में पीपासर को छोड़कर अन्यत्र चले गये थे। अब यहां एक मन्दिर भी बना हुआ है। मुकाम से पीपासर तक पक्की सड़क बनी हुई है। मुकाम में आयोजित होने वाले मेलों के समय लोग जाम्भोजी के अवतार-स्थल के दर्शन करने भी पहुंचते हैं।

मुकाम :- मुकाम में जाम्भोजी की समाधि है और समाधि पर मन्दिर बना हुआ है। सम्वत् 1593 की पोह सुदी दूज, सोमवार को इस मन्दिर की नींव रखी गई थी और सम्वत् 1597 की चैत्र सुदी सप्तम, शुक्रवार को मन्दिर बनकर तैयार हो गया था। यहां पर वर्ष में दो मेले लगते हैं - एक फाल्गुन की अमावस्या को एवं दूसरा आसोज की अमावस्या को। विश्नोई समाज में यह सबसे पवित्र स्थान माना जाता है। इसीलिए देश के सभी भागों में रहने वाले विश्नोई यहां पहुँचते हैं। समाधि पर बने पुराने मन्दिर को अब और अधिक भव्य बना दिया है।

समराथळ :- मुकाम से पांच किलोमीटर दक्षिण पूर्व में एक ऊँचा धोरा है, इसे ही समराथळ कहते हैं। जाम्भोजी ने विश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन यहीं किया था। सम्प्रदाय प्रवर्त्तन से वैकुण्ठ वास तक यही धोरा जाम्भोजी का उपदेश स्थल रहा है और यही उनका स्थायी निवास स्थान रहा है। 'हरी कंगहड़ी मंडप मैड़ी तहां हमारा वासा' कहकर जाम्भोजी ने इसी धोरे की ओर संकेत किया है। विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करके जाम्भोजी यहीं आकर निवास करते थे। इस धोरे के चारों ओर जंगल ही जंगल है। जाम्भोजी के उपदेश स्थल एवं निवास स्थल के कारण ही लोग इसे सबसे पवित्र मानते हैं।

समराथळ के नीचे एक तालाब है, जहां की मिट्टी को लोग धोरे पर डालते हैं। कहते हैं कि यहीं से जाम्भोजी ने अपने पांचों शिष्यों को सोवन नगरी दिखायी थी और सोवन नगरी से रणधीर जी सोने की सिल लाये थे। अनेक कवियों ने समराथळ की महिमा का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। इसके सोवन नगरी थळा एवं थळ आदि कई नाम प्रचलित है 'पर वर्तमान में इसका नाम धोकधोरा' ही अधिक प्रचलित है। मुकाम मेले के समय जातरी अमावस्या को प्रात:काल यहां

पहुंचते हैं और नीचे से मिट्टी लाकर धोरे पर डालते हैं। यहीं पर सामूहिक हवन करते हैं तथा पाहळ ग्रहण करते हैं। अब समराथल पर एक भव्य मन्दिर भी बना दिया है।

जम्भळाव :- जोधपुर जिले में फलौदी से 25 किलोमीटर पूर्वोत्तर में जाम्भोळव है। यहीं एक बड़ा तालाब है। जाम्भोजी ने जन कल्याण हेतु यह तालाब बनवाया था। यह वही स्थल है, जहां कपिल मुनि ने तपस्या की थी और पाण्डवों ने बनवास काल में यज्ञ किया था। यहां आथूणी जागां एवं अगूणी जागां के नाम से साधुओं की दो परम्पराएं प्रचलित हैं। यहां खेजड़े के नीचे सफेद पत्थर का सिंहासन है। अब सिंहासन मन्दिर के अन्दर है एवं खेजड़ा बाहर है। यहां वर्ष में दो मेले लगते हैं - एक चैत्र की अमावस्या को (बड़ा मेला) एवं दूसरा भादवा की पूर्णिमा को (छोटा मेला)। यहां आकर लोग तालाब से मिट्टी निकालते हैं एवं स्नान करके अपने तन-मन को पवित्र करते हैं।

जांगळू :- देशनोक से दस किलोमीटर की दूरी पर जांगळू गांव है। जांगळू गांव से लगभग 5 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम की ओर जांगळू की साथरी है। यहीं पर जाम्भोजी अपने शिष्यों के साथ ठहरे थे और हवन किया था। यहीं एक चौकी बनी हुई है। इस चौकी के पास ही एक कंकेहड़ी का वृक्ष है। कहते हैं कि इसे जाम्भोजी ने लगाया था। साथरी एवं जांगळू गांव के बीच एक बड़ा तालाब है, जो बरींगआली नाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इसे जाम्भोजी के आदेश पर बर सिंह बणियाल ने खुदवाया था।

जांगळू गांव में एक बड़ा मन्दिर बना हुआ है, जिसमें जाम्भोजी के शरीर का चोळा एवं चींपी (डिब्बी) रखी हुई है। इन दोनों वस्तुओं के दर्शनों के लिए लोग यहां पहुँचते हैं। यहां वर्ष भर में कई क्विं. घी का चढ़ावा आता है।

रोटू :- रोटू गांव नागौर से 35 किलोमीटर पूर्वोत्तर में है। यहां एक मन्दिर है, जिसमें एक खांडा है एवं एक पत्थर पर जाम्भोजी का चरण चिन्ह है। इसी गांव में जाम्भोजी ने अपनी शिष्या उमादेवी (नौरंगी) को भात भरा था। रोटू में ही जाम्भोजी ने खेजड़ियों का बाग लगाया था, जो आज भी मौजूद है।

लोदीपुर :- मुरादाबाद से सात किलोमीटर पश्चिम की ओर, दिल्ली मुरादाबाद रेल मार्ग पर लोदीपुर का पवित्र धाम है। भ्रमण करते समय जाम्भोजी यहां पहुंचे थे और खेजड़ी का एक वृक्ष लगाकर लोगों को वृक्ष प्रेम की ओर प्रेरित किया था। यह खेजड़ी आज भी यहां है। यहां प्रतिवर्ष चैत्र की अमावस्या को मेला लगता है।

लालासर :- बीकानेर से 55 किलोमीटर दक्षिण पूर्व में लालासर की साथरी है।

यहाँ पर जाम्भोजी ने हरी कंकेड़ी के नीचे अपने भौतिक शरीर को त्यागा था। जाम्भोजी का निर्वाण-स्थल होने के कारण ही यह स्थान इतना पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण है। यहां प्रतिवर्ष मार्ग शीर्ष वदी नवमी को मेला भी लगता है। मुकाम मेले में आने वाले कुछ जातरी यहां भी पहुँचते हैं।

खेजड़ली :- जोधपुर से तीस किलोमीटर दूर शहीद स्थल खेजड़ली है। यहां सम्वत् 1787, भादो सुदी दशमी, मंगलवार को वृक्षों की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले के यज्ञ की पूर्णाहुति हुई थी। इसमें 363 बिश्नोई स्त्री-पुरुषों ने अहिंसात्मक ढंग से वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राण न्यौछावर किये थे। यहां प्रति वर्ष भादो सुदी दशमी को 'मेला' लगता है, जो बिश्नोई समाज के वृक्ष प्रेम एवं रक्षा का प्रतीक है।

इन पवित्र धामों के अतिरिक्त लोहावट, रिणसीसर भींयासर, गुढ़ा, रूड़कली, रामड़ावास, पुर, दरीबा, समेला एवं नगीना आदि स्थान भी धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

6. सम्प्रदाय के संस्कार एवं त्यौहार

बिश्नोई सम्प्रदाय में जन्म, विवाह एवं मृत्यु तीन ही संस्कार मुख्य हैं। हवन, कलश स्थापना एवं पाहळ का विधान प्रत्येक संस्कार पर होता है। प्रसव के बाद तीस दिन तक सूतक रखा जाता है। इस अवधि में बच्चे एवं बच्चे की मां को घर में अलग रहने की व्यवस्था की जाती है। जच्चा कोई भी गृह-कार्य नहीं करतीं। इक्तिसवें दिन हवन करके, कलश की स्थापना करके पाहळ किया जाता है। पाहळ बच्चे के मुंह में दिया जाता है तथा उसके कानों से छुवाया जाता है। इस अवसर पर बालक मंत्र बोला जाता है। विष्णु मंत्र कान जल छुवा श्री जम्भ गुरु की कृपा से बिश्नोई हुआ। बालक मंत्र एवं पाहळ ग्रहण करने से ही बच्चा बिश्नोई कहलाता है। जच्चा को भी पाहळ दिया जाता है और घर में पाहळ के छींटे देकर, घर को पवित्र किया जाता है। इस दिन से घर का सूतक समाप्त हो जाता है और बच्चे की मां भी इस दिन से गृह-कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। इस तरह बिश्नोई सम्प्रदाय के उनतीस नियमों में से प्रथम नियम 'तीस दिन सूतक' की परिपालना की जाती है।

विवाह :- जीवन में विवाह का संस्कार ही सबसे आनंददायक होता है। बिश्नाई सम्प्रदाय में विवाह से सम्बन्धित सभी रस्में बहुत ही सादे ढ़ंग से सम्पन्न होती हैं। विवाह किसी भी समय हो सकता है। इसमें पंडितों से कोई मूहूर्त नहीं निकलवाया जाता है और न ज्योतिषियों से कोई शुभ समय पूछा जाता है। इसमें तो केवल वर

एवं वधू पक्ष की सुविधा ही देखी जाती है। इसमें सम्प्रदाय के आडम्बर हीन होने का प्रमाण स्वयं ही मिल जाता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह के लिए अपनी दादी, नानी एवम् माँ की गोत टाल कर किसी भी बिश्नोई से विवाह सम्बन्ध हो जाता है। विवाह से पूर्व सगाई की रस्म सम्पन्न होती है, जो विवाह से कुछ महिने या वर्ष दो वर्ष पूर्व भी हो जाती है। सगाई के बाद विवाह कब होगा, इसका भी कोई निश्चित समय नहीं है। इसमें भी दोनों पक्षों की सुविधा प्रमुख है। सामूहिक विवाह की प्रथा होने के कारण कई बार अन्य बच्चों की सगाई होने पर ही विवाह सम्पन्न होता है। सगाई में वर एवं कन्या दोनों पक्षों में से कोई भी किसी के यहां जाकर इस रस्म को पूरा कर लेते हैं। इसमें कन्या पक्ष की ओर से सवा रुपये के साथ नारियल भेंट किया जाता है। वर पक्ष की ओर से कन्या को पगे लगाई (कुछ रुपये) दी जाती है। वहां उपस्थित लोगों को गुड़ बांटा जाता है। विवाह के लिए सगाई की रस्म आवश्यक हो, ऐसा भी नहीं है। कई बार मौखिक रूप से सम्बन्ध तय हो जाता है और सीधे विवाह की तिथि निश्चित कर लेते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में सम्बन्ध तय होने के बाद वर एवं कन्या पक्ष की सुविधानुसार विवाह की तिथि निश्चित कर ली जाती है। उसी के अनुसार कन्या पक्ष के लोग अपने घर, अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर कच्चे सूत के धागों की दो लच्छियां तैयार करते हैं। उन दोनों में बराबर की उतनी ही गांठे लगायी जाती हैं, जितने दिनों के बाद विवाह का दिन निश्चित किया जाता है। फिर उन्हें हल्दी से पीले कर लेते हैं, इसे 'डोरा' करना कहते हैं। उसी समय हल्दी डालकर कुछ चावल भी पीले किये जाते हैं। ये पीले चावल, सवा रुपया और एक डोरा नाई को देकर वर पक्ष के गांव भेजा जाता है। नाई वर पक्ष के गांव के बाहर से खेजड़ी की एक टहनी अपने साथ ले लेता है। खेजडी की यह टहनी बिश्नोई सम्प्रदाय के वृक्ष-प्रेम की भावना की प्रतीक भी है और साथ ही इसे देखकर लोग समझ जाते हैं कि किसी के घर 'डोरा' आया है। वर-पक्ष के लोग नाई का प्रेम-पूर्वक स्वागत करते हैं। नाई उस डोरे को घर के बुजुर्ग को सौंप देता है। वर-पक्ष के लोग कुछ रुपये एवं कम्बल आदि के द्वारा नाई को बधाई देते हैं। घर का बुजुर्ग उस डोरे को अपनी पगड़ी से बांध लेता है और प्रतिदिन एक गांठ खोलता रहता है। यह डोरा कन्या पक्ष का वर पक्ष को बारात लेकर आने का निमन्त्रण होता है और इसे नाई से ग्रहण करना वर-पक्ष की स्वीकृति होती है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह बड़े सादे ढंग से सम्पन्न होता है। इसमें अन्य जातियों की तरह फेरे नहीं होते अपितु पीढ़ी बदलते हैं। प्रारम्भ में वर को बाएं एवं कन्या को दाएं उत्तर की ओर मुँह करके अलग-अलग पीढ़ों पर बैठाया

जाता है। गायनाचार्य वर के कमरबन्द से कन्या के आंचल के पल्ले में गांठ बांधता है, जिसे गंठजोड़ा कहते है। इसके साथ ही कन्या के बाएं हाथ को वर के दाएं हाथ में पकड़ा दिया जाता है और दोनो हाथों के बीच में मेहंदी की पिंडी रखते हैं, जिसे हथलेवा कहते हैं। यज्ञ वेदी एवं दोनों पक्षों के लोगों के सम्मुख गोत्राचार पढ़ना, कलश की स्थापना, पाहळ करना एवं वर-कन्या की ओर से प्रश्नोत्तरी पढ़ी जाती है। इसके बाद वर-कन्या का स्थान बदला जाता है अर्थात् कन्या वर के बांई ओर बैठती है, जिसे पीढ़ी बदलना कहते है। इसके बाद शिव-पार्वती, राम-सीता एवं कृष्ण-रुक्मणी का साखोचार पढ़ा जाता है। इस साखोचार से यह आशा की जाती है कि वर-वधू की जोड़ी शिव-पार्वती या राम-सीता या कृष्ण-रुक्मणी की तरह आदर्श जोड़ी प्रामाणित हो। अन्त में कन्या की मां वर-वधू की आरती करती है और गायनाचार्य द्वारा वर को ध्रुव तारा दिखाया जाता है, जों वर को अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्व पर अटल रहने का सन्देश देता है। अन्त में वर-वधू को पाहळ दिया जाता है। इसी के साथ विवाह की रस्म सम्पूर्ण हो जाती है।

अन्तिम संस्कार :- संसार में मृत्यु के बाद शरीर को दाग देने की चार प्रथाएं प्रचलित हैं - अग्निदाग, जल दाग, भूमिदाग एवं वायु दाग। बिश्नोई सम्प्रदाय में मृत्यु के बाद शरीर को भूमि में गाडने की प्रथा है। सुविधा एवं पर्यावरण शुद्धता की दृष्टि से यह प्रथा बहुत ही उत्तम एवं वैज्ञानिक है। तीसरे दिन हवन एवं पाहळ करके मृत्यु का सूतक समाप्त कर दिया जाता है। पहले शोक मनाने के लिए सगे-सम्बन्धी एवं मित्र त्यौहार तक आते-रहते थे पर अब केवल उनतीस दिन कर दिये है। वृद्ध स्त्री-पुरुष की मृत्यु पर मृत्यु भोज करने की परम्परा है, जिसे बन्द करने के पूरे प्रयास किये जा रहे हैं। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण इसमें कुछ सफलता भी मिल रही है।

त्यौहार :- बिश्नोई सम्प्रदाय में होली के अतिरिक्त शेष सभी हिन्दू त्यौहार बड़े ही उत्साह एवं आनन्द के साथ मनाये जाते हैं। अपने को प्रहलाद पंथी मानने के कारण बिश्नोई होलिका दहन की रात्रि को कोई उत्सव नहीं मनाते। होली के दिन ही प्रहलाद के पिता ने प्रहलाद को आग में जलाकर मारने का निश्चय किया था। इसी शोक में बिश्नोई सम्प्रदाय में इस दिन सूर्यास्त से पूर्व ही खीचड़ा एवं पळेवडी खाने की परम्परा है। यह भोजन शोक का प्रतीक है। दूसरे दिन प्रहलाद के जीवित होने का समाचार पाकर सभी आनंदित होते हैं। प्रातः काल हवन करते हैं और पाहळ लेते हैं। दूसरे लोगों की तरह रंग खेलने का भी रिवाज नहीं है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में अमावस्या को बहुत ही पवित्र मानते हैं।

इस दिन लोग सामूहिक रूप से हवन करते हैं, व्रत रखते हैं, तालाब से मिट्टी निकालते हैं और रात्रि में भजन एवं साखियां गायी जाती हैं। अमावस्या को व्यावसायिक कार्य भी बहुत कम किये जाते हैं। जाम्भोजी की जन्म-तिथि एवं बैकुण्ठ-वास तिथि का भी बहुत महत्त्व है। इन दोनों तिथियों पर भी हवन होता है एवं भजन-साखियां गायी जाती हैं।



सन्दर्भ

1 जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका)-डॉ हीरालाल माहेश्वरी, सबद संख्या 99

2 जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका)-डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, मुखबंध पृ-41

3 जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य (पहला भाग)-डॉ. हीरालाल माहेश्वरी पृ-437

लोक साहित्य एवं लोकगीत

लोक साहित्य

मनुष्य का प्रारम्भिक जीवन प्रकृति पर निर्भर था। प्रकृति उसके लिए सब कुछ थी। प्रारम्भिक अवस्था में मानव जीवन कृत्रिमता से बहुत दूर था। कृत्रिमता एवं आडम्बर से दूर रहकर वह बहुत ही प्रसन्न रहा करता था। मन की प्रसन्नता के लिए उस समय भी साहित्य की रचना की जाती थी। परन्तु उस समय के साहित्य और आज के शिष्ट साहित्य में अन्तर है। आज का शिष्ट साहित्य शिल्प विधान एवं अनेक नियमों से जकड़ा हुआ है लेकिन उस अवस्था का साहित्य इन सब बातों से दूर था। प्राकृतिक अवस्था का साहित्य "उतना ही स्वाभाविक था, जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था, जितना आकाश में विचरने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था, जितनी गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोक साहित्य के रूप में उपलब्ध है।"[1] विज्ञान के विकास के साथ-साथ मानव प्रकृति से दूर हटता गया और उसका जीवन कृत्रिमता से युक्त हो गया। मानव के इसी जीवन का चित्रण शिष्ट साहित्य में होता है, पर लोक साहित्य में कृत्रिमता का अभाव होता है। स्वाभाविकता एवं सरलता लोक साहित्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण लोक साहित्य में मानव-जीवन यथार्थ रूप में चित्रित होता है और यह मानव जाति का सही प्रतिनिधित्व करता है। लोक साहित्य में मानव जीवन का अन्तः एवं बाह्य स्वरूप अभिव्यक्त होता है। इसी आधार पर लोक साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए श्याम परमार ने लिखा है " व्यक्तित्व से रहित समान रूप से समाज की आत्मा को व्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्ति लोक साहित्य की श्रेणी में आती है।"[2] लोक भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति लोक साहित्य में ही होती है। इसी का वर्णन करते हुए डॉ. उपाध्याय ने लिखा है " सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में वर्तमान में जो निरक्षर जनता है,

उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दु:ख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं।[3]

लोक साहित्य में आडम्बर एवं कृत्रिमता के समावेश होते ही स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। स्वाभाविकता के नष्ट होते ही लोकतत्व की समाप्ति हो जाती है और इसी लोक तत्व की समाप्ति के साथ लोक साहित्य समाप्त हो जाता है। लोक साहित्य में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति लोक भाषा में होती है। इस तरह सरलता, स्वाभाविकता, लोक भाषा एवं लोक मानस आदि लोक साहित्य के आवश्यक तत्व हैं।

लोक साहित्य अथाह समुद्र के समान हैं, जिसमें लोक साहित्य की विधाओं की अनेक नदियां आकर मिलती हैं। लोक साहित्य में इन सभी विधाओं का अपना-अपना महत्त्व है। लोक साहित्य में सर्वाधिक भाग लोक गीतों का है। लोक गीतों में जीवन के सभी पक्षों का वर्णन रहता है। श्रावण-भादों की ठंडी रात में जब कोई गायक खेत में किसी लोकगीत को गाता है, तो गायक के साथ-साथ श्रोता भी आनंद विभोर हो जाते हैं। त्यौहारों एवं विभिन्न संस्कारों पर स्त्रियां लोकगीतों द्वारा मनोरंजन करती हैं तथा उत्सव की शोभा बढ़ाती हैं। रात्रि में नानी-दादी लोक कथाओं द्वारा बच्चों का मन बहलाती हैं। लोक नाट्य भी ग्रामीण जनता के मनोरंजन का अच्छा साधन रहा है। लोक जीवन में व्याप्त लोकोक्तियां एवं मुहावरे भी लोक साहित्य के विकास में सहायक रहे हैं। लोक साहित्य की प्रत्येक विधा लोक भावना से युक्त रहती है। लोक जीवन को प्रस्तुत करना लोक साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति अलग-अलग रूपों में होती है। इन रूपों का विभाजन एक समस्या रही है। विभिन्न विद्वानों ने लोक साहित्य का विभाजन अपने-अपने ढंग से किया है।"[4] प्रत्येक विद्वान द्वारा लोक साहित्य के विभाजन की कुछ विशेषताएँ हैं एवं कुछ कमियां हैं। व्यापक स्वरूप के आधार पर लोक साहित्य को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. लोकगीत 2. लोक गाथा 3. लोक कथा 4. लोक नाट्य
5. लोकोक्तियां एवं मुहावरे 6. पहेलियाँ।

लोक साहित्य का क्षेत्र उतना ही विशाल है, जितना की यह लोक है। इसी विशालता के कारण ही आज लोक साहित्य का महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। यदि कोई किसी समाज को पूर्ण रूप से जानना चाहे तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उसके लोक साहित्य का अध्ययन करें। लोक साहित्य में समाज का वास्तविक चित्रण रहता है। लोक साहित्य के द्वारा न केवल

समाज के वर्तमान रूप का पता चलता है अपितु समाज का सम्पूर्ण इतिहास हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। समाज के विकास एवं परिवर्तन के साथ-साथ लोक साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है। समाज के विभिन्न रीति-रिवाज, नैतिक मूल्य एवं धार्मिक मान्यताओं की रक्षा लोक साहित्य द्वारा होती है।

धार्मिक दृष्टि से भी लोक साहित्य का बहुत महत्त्व है। धर्म के विभिन्न पक्षों का ज्ञान लोक साहित्य द्वारा ही संभव है। विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना, उपासना पद्धति, व्रत एवं मेलों आदि का वर्णन लोक साहित्य में होता है। समाज में प्रचलित लोक कथाओं में धर्म एवं नीति ही होती है। विभिन्न लोक कथाओं में धर्म, नीति एवं पाप-पुण्य की व्याख्या होती रहती है। पारिवारिक संबंधों की अभिव्यक्ति भी लोक साहित्य में होती है। इस अभिव्यक्ति में लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। लोकगीतों में एक ओर आदर्श चरित्र का वर्णन किया जाता है तो दूसरी ओर उनमें संबंधों का यथार्थ रूप भी चित्रित होता है।

इतिहास की घटनाएं भी लोक साहित्य में अभिव्यक्त होती रहती है। इसी कारण इतिहासकारों को भी लोक साहित्य से अमूल्य सामग्री प्राप्त हो जाती है। भाषा-विज्ञान के लिए तो लोक साहित्य अमूल्य निधि है। शब्दों के विकास की जानकारी के लिए भाषा विज्ञान को लोक साहित्य से सहायता लेनी पड़ती है। कवि भी लोक साहित्य से अनेक शब्द एवं मुहावरों को ग्रहण करता है, जिससे भाषा एवं साहित्य का क्षेत्र विस्तृत होता रहता है।

लोकगीत का स्वरूप एवं विशेषताएँ

मानव का प्रारम्भिक जीवन सरलता से परिपूर्ण था। उस समय जटिलता एवं वैविध्य का मानव जीवन में अभाव था। उस अवस्था का मानव भावना प्रधान था। उस समय मानव आनद एवं मस्ती में रहता था। मस्ती के क्षणों में मानव अपनी भावनाओं को अनजाने में ही किसी लय में अभिव्यक्त करने लगा। इसी लयमयी अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जा सकता है और यहीं से लोकगीतों का प्रारम्भ माना जा सकता है। तब से आज तक लोकगीतों की यह परम्परा चली आ रही है। इस परम्परा के बारे में राम नरेश त्रिपाठी ने लिखा है - "जब से पृथ्वी पर मनुष्य है, तब से गीत भी है। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जन्म-मरण साथ चलता रहता है"[5]

अनुभूति एवं अभिव्यक्ति कविता के आधारभूत तत्व हैं। कवि अपने जीवन में जो कुछ अनुभव करता है, उसे भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त कर देता है। लेकिन किसी बात को अनुभव करना एक बात है और उसे अभिव्यक्त

करना दूसरी बात है। अभिव्यक्ति के लिए कवि को कल्पना का सहारा भी लेना पड़ता है और कभी-कभी उसकी अनुभूति कल्पना पर आधारित होती है। ऐसी स्थिति में अनुभूति की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है और कविता पाठक को प्रभावित करने में असमर्थ रहती है। पर यह बात लोकगीतों में नहीं होती। लोकगीत वास्तविकता पर आधारित रहते हैं। लोकगीतों की रचना जन साधारण द्वारा होती है। जन साधारण द्वारा रचयित एवं जन भावनाओं से युक्त होने के कारण ही लोकगीत जन साधारण को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं। लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण ही लोकगीतों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। क्षेत्र की व्यापकता के कारण ही लोकगीतों को परिभाषा में बांधना कठिन है। फिर भी अनेक विद्वानों ने लोकगीत की अनेक परिभाषाएं दी हैं।

पैरी के अनुसार "लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है।"[6] ग्रिम के शब्दों में "लोकगीत तो अपने आप बनते हैं।"[7] राल्फ विलियक्स के अनुसार "लोकगीत न पुराना होता है, न नया, वह तो जंगल के एक पेड़ जैसा है, जिसकी जड़ें तो दूर जमीन में धँसी हुई है परन्तु जिसमें नयी-नयी टहनियां, पत्ते और फल लगते रहते हैं।"[8] भारतीय विद्वानों ने भी लोकगीतों के बारे में अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोकगीत आर्येत्तर सभ्यता *के वेद हैं।*[9] *देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में "लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह बोले* चित्र हैं।"[10] डॉ शास्त्री के अनुसार "लोकगीत हमारे जीवन-विकास के इतिहास हैं"[11]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि लोकगीत के व्यापक क्षेत्र के कारण ही विद्वानों ने लोकगीत की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। जिस विद्वान की दृष्टि लोकगीत के जिस पक्ष की ओर गई, उसने उसी के आधार पर लोकगीत की परिभाषा दे दी है पर किसी भी परिभाषा में लोकगीत का सम्पूर्ण स्वरूप अभिव्यक्त नहीं हो पाया है। वास्तव में लोकगीत मानव को प्रकृति की *अनोखी देन है। लोकगीतों में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होता। ये जाति या देश विशेष की संस्कृति के रक्षक हैं।* लोकगीतों में एक ओर मानव जाति का इतिहास सुरक्षित है तो दूसरी ओर ये मानव जाति के प्रेरणा स्रोत हैं।

समय के साथ-साथ लोकगीतों में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग का समाज अपनी रुचि के अनुसार लोकगीतों में कुछ न कुछ परिवर्तन करता रहता है। लोकगीतों के परिवर्तन के पीछे जो मुख्य कारण है, वह इनका मौखिक होना ही है। किसी अक्षर ज्ञाता के द्वारा लिखे जाने से पूर्व सभी लोक गीत

मौखिक ही होते हैं। लोकगीत लिपिबद्ध होने के पश्चात् भी अपनी इस परिवर्तनशीलता के गुण को नहीं छोड़ते। लिखित गीत को गाने वाले एवं पढ़ने वाले बहुत कम होते हैं। जो लोकगीतों को गाते हैं, ये तो इनके मौखिक रूप को ही स्वीकार करते हैं और इसी कारण इनमें परिवर्तन होता रहता है। इसी परिवर्तनशीलता की विशेषता के कारण ही लोकगीत कभी पुराने नहीं होते। लोकगीत मुक्त वातावरण में सांस लेते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार के नियमों में नहीं बांधा जा सकता। नियमों की जकड़न से लोकगीतों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। विकास की प्रवृत्ति होने के कारण लोकगीत नियमों से मुक्त रहते हैं। बन्धन के अभाव में ही ये समय के साथ-साथ बदलते रहते हैं।

लोकगीतों का रचयिता समाज होता है। इसी कारण लोकगीतों में समाज की सम्पूर्ण भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं और ये पूरे समाज को प्रभावित करते हैं। समाज की आत्मा ही लोकगीतों की आत्मा होती है। लोकगीत का रचयिता भी अपने व्यक्तित्व को इसकी आत्मा में डूबो देता है। इसी कारण लोकगीतों में उसके रचयिता के व्यक्तित्व की छाप नहीं होती। शिष्ट साहित्य की प्रत्येक रचना अपने रचयिता के व्यक्तित्व से युक्त रहती है, जबकि लोकगीतों में ऐसा नहीं होता है। समष्टि का भाव होने के कारण और समाज द्वारा रचयित होने के कारण लोकगीतों में किसी व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं रहता।

लोकगीतों में मानवीय अनुभूति स्वाभाविक एवं सरल शब्दों में अभिव्यक्त होती रहती है। लोकगीतों में सहज रूप से जन साधारण की भाषा में भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। इनमें प्रयास जन्य कुछ नही होता। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों पक्षों में ही स्वाभाविकता का पूरा-पूरा निर्वाह किया जाता है। स्वाभाविकता लोकगीतों का प्राण तत्व है।

भावों की दृष्टि से सभी जातियों एवं जनपदों के लोकगीत एक जैसे ही होते हैं। पर जातीय एवं क्षेत्रीय आधार पर लोकगीत अलग-अलग हो जाते हैं। प्रत्येक जाति के गीतों में जातीय विशेषताएँ व क्षेत्र विशेष के गीतों में क्षेत्रीय विशेषताओं का होना स्वाभाविक है। जाति विशेष के विभिन्न रीति-रिवाज, त्यौहार, पहनावा एवं भाषा आदि का परिचय लोकगीतों से प्राप्त कर सकते हैं। लोकगीतों की भाषा से हमारे शिष्ट साहित्य की भाषा-सम्पदा में वृद्धि होती है।

लोकगीतों में पारिवारिक संबंधों का वर्णन मुख्य रूप में रहता है। भाई-बहिन का स्नेह, पति-पत्नी का प्रेम, सास-बहू की कलह एवं नणद-भाभी का आपसी द्वेष आदि का चित्रण लोकगीतों द्वारा होता रहता है। इस तरह के चित्रण

से हमें विभिन्न कालों एवं विभिन्न जातियों के पारिवारिक संबंधों की जानकारी होती रहती है।

लोकगीतों का वास्तविक आनंद उनकी गेयता में ही निहित है। इसी गेयता के कारण ही लोकगीत हमें अपनी जमीन से जोड़ते हैं। पाश्चात्य संगीत हमें अपनी धरती से अलग करता है और लोक संगीत हमें अपनी धरती से जोड़ता है। लोकगीतों की प्रभावोत्पादकता उनकी गेयता में ही रहती है। गेयता के कारण ही लोकगीतों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति रहती है। पुनरावृत्ति से भी लोकगीतों के सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

लोकगीतों का वर्गीकरण एवं बिश्नोई लोकगीत

लोकगीतों में मानवीय भाव एवं जीवन से संबंधित सभी विषयों का वर्णन किया जाता है। इसी कारण लोकगीतों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसी व्यापकता के कारण लोकगीतों का विभाजन विद्वानों के लिए एक समस्या रहा है। अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर अनेक विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण किया है, पर ऐसा कोई भी वर्गीकरण नहीं है, जो लोक गीतों के सम्यक मूल्यांकन में सहायक हो सके और जिस पर सभी विद्वान एक मत हो सकें।

डॉ. सत्येन्द्र ने गाने के उद्देश्य की दृष्टि से लोकगीतों को अनुष्ठान संबंधी एवं मनोरंजन संबंधी दो भागों में बांट कर, फिर गाने के अवसरों के अनुसार उनका विभाजन किया है।[12]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकगीतों को पांच भागों में बांटा है।[13]

1. संस्कार की दृष्टि से
2. रसानुभूति की प्रणाली से
3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम में
4. विभिन्न जातियों के प्रकार से
5. श्रमगीत की दृष्टि से

इन पांच प्रकार के गीतों को बाद में अन्य भागों में विभाजित किया है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतों को ग्यारह भागों में बांटा है।[14] पं. सूर्यकरण पारीक ने लोकगीतों के व्यापक क्षेत्र को देखते हुए उन्हें उनतीस भागों में बांटा है।[15] डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ने गायकों के आधार पर मालवी लोकगीतों को तीन भागों में विभक्त किया है।[16]

1. बालक-बालिकाओं के गीत

2. स्त्रियों के गीत

3. पुरुषों के गीत

इन विद्वानों के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण किया है।[17] लोकगीत जाति विशेष के रीति-रिवाज, त्यौहारों एवं धार्मिक उत्सवों के अनुसार गाये जाते हैं। इसी कारण एक जाति के लोकगीतों एवं दूसरी जाति के लोकगीतों में अन्तर रहता है। यह अन्तर लोकगीतों के वर्गीकरण को भी प्रभावित करता है। बिश्नोई सम्प्रदाय के रीति-रिवाज, संस्कार, धार्मिक विश्वास एवं त्यौहार मनाने के अन्तर के कारण बिश्नोई लोकगीतों का अपना वैशिष्ट्य है। सम्यक मूल्यांकन के उद्देश्य से बिश्नोई लोकगीतों को निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं :-

1. संस्कार संबंधी गीत
   - क. जन्म के गीत
   - ख. विवाह के गीत
   - ग. मृत्यु के गीत
2. देवी-देवताओं एवं मेलों के गीत
3. त्यौहार के गीत
   - क. होली के गीत
   - ख. गंवर के गीत
   - ग. सावण की तीज के गीत
4. श्रम-परिहार के गीत



सन्दर्भ

1. लोक साहित्य की भूमिका-डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ 24-25
2. भारतीय लोक साहित्य-श्याम परमार, पृ. 22
3. लोक साहित्य की भूमिका-डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 25
4. क. राजस्थान के लोक गीत-डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल, पृ. 6
   ख. लोक साहित्य की भूमिका-डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 60
   ग. हाड़ौती लोकगीत-डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट, पृ 5
   घ छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोक साहित्य का अध्ययन-डॉ. शकुन्तला वर्मा, पृ. 89
5. कविता कौमुदी (ग्रामगीत)-रामनरेश त्रिपाठी, पृ 78
6. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ. 447
7. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ. 448

8 एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ. 448
9. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय-श्याम चरण दुबे, (भूमिका) पृ. 5
10 धरती गाती है-देवेन्द्र सत्यार्थी
11 मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन-तेजनारायण लाल शास्त्री, पृ 16
12. बृज लोक साहित्य का अध्ययन-डॉ सत्येन्द, पृ 118
13. लोक साहित्य की भूमिका-डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 61
14 कविता कौमुदी-रामनरेश त्रिपाठी, भाग 5, पृ 45
15 राजस्थानी लोकगीत-सूर्यकरण पारीक, पृ. 22-25
16. मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन-डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय, पृ 62
17 क. छत्तीसगढ़ी लोकजीवन और लोक साहित्य-डॉ. शकुन्तला वर्मा, पृ 122-123
ख. गढ़वाली लोक गीत-एक सांस्कृतिक अध्ययन-डॉ. गोविन्द चातक, पृ. 13-14
ग हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य-डॉ. शकरदयाल यादव, पृ 124
घ लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम-डॉ शान्ति जैन, पृ 11

जन्म के गीत

हिन्दू धर्म में जन्म से मृत्यु तक कुल सोलह संस्कार हैं। इन सभी संस्कारों का अपना-अपना महत्त्व है। इनमें से विश्नोई सम्प्रदाय में जन्म, विवाह एवं मृत्यु के संस्कार ही महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में समस्त मानव जाति में भी जितना महत्त्व इन तीन संस्कारों का है, उतना अन्य का नहीं है। इनके महत्त्व के पीछे भी विशिष्ट कारण है। जन्म का संस्कार इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस संस्कार के द्वारा संसार में एक नये प्राणी का आगमन होता है और इस आगमन पर प्रसन्न होना स्वाभाविक है। युवावस्था जीवन का वसन्तकाल माना जाता है और इस वसन्तकाल में विवाह का संस्कार और भी अधिक आनन्द प्रिय होता है। इसी संस्कार के द्वारा दो दिलों का मिलन होता है और साथ ही इससे सृष्टि के विकास में योगदान प्रारम्भ हो जाता है। मृत्यु का संस्कार यद्यपि प्रसन्नता का द्योतक नहीं है फिर भी महत्त्वपूर्ण अवश्य है। विश्नोई सम्प्रदाय में इन तीनों ही संस्कारों पर कुछ समान क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। हवन करना, कलश स्थापना एवं पाहळ करना, ये तीनों ही क्रियाएं इन संस्कारों पर सम्पन होती है। इन तीनों ही संस्कारों पर विश्नोई सम्प्रदाय में गीत गाये जाते हैं। "प्रत्येक संस्कार के शास्त्रीय एवं लौकिक दो भाग होते हैं। संस्कार का शास्त्रीय भाग पुरोहित या कुल गुरु द्वारा एवं लौकिक भाग लौकिक व्यवहारों एवं लोक गीतों द्वारा सम्पन्न होता है"[1] लौकिक व्यवहार एवं लोकगीतों का कार्य मुख्य रूप से स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न होता है। गीतों द्वारा प्रत्येक उत्सव उल्लासमय बन जाता है।

विश्नोई सम्प्रदाय में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र का अधिक महत्त्व रहा है। यह महत्त्व आज के इस अर्थ प्रधान युग में और अधिक बढ़ गया है। एक तो कन्या पराया धन होती है और दूसरा वर ढूंढने एवं दहेज की कुप्रथा के कारण माता-पिता कन्या जन्म को सुखदायक नहीं मानते हैं। पुत्री घर को दु:खी एवं सूना करके चली जाती है और पुत्र घर में बहू

लाकर घर को आनंद से भर देता है।[2] इसी आधार पर भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र का अधिक महत्त्व रहा है। यही कारण है कि बिश्नोइयों के यहां पुत्री-जन्म पर कोई गीत नहीं गाया जाता। बिश्नोई सम्प्रदाय में जन्म से संबंधित जितने भी गीत हैं, वे सब पुत्र-जन्म के अवसर पर ही गाये जाते हैं। जन्म से पूर्व किसी भी प्रकार के गीत बिश्नोई सम्प्रदाय में नहीं गाये जाते। पुत्र-जन्म की प्रसन्नता सर्व प्रथम कांसी की थाली बजाकर प्रकट की जाती है। यह कार्य घर की कोई वृद्ध महिला ही करती है। इसी अवसर पर छोटे बच्चे बड़ों से पुत्र - जन्म की बधाई मांगते हैं। सम्प्रदाय में प्रथम प्रसव प्रायः पीहर में ही होता है। इसीलिए पुत्र होने पर पीहर से बधाई के लिए नाई को ससुराल भेजा जाता है। इसी प्रकार ससुराल से भे पुत्र-जन्म पर पीहर में नाई को बधाई के लिए भेजा जाता है। बधाई का कार्य अधिकतर प्रथम पुत्र के जन्म पर ही होता है। गीत भी अधिकतर प्रथम पुत्र के जन्म पर ही गाये जाते हैं। भाई के यहां पुत्र का जन्म हुआ है, इस समाचार को पाकर बुआ अपने भतीजे को देखने पहुंच जाती है। बहिन अपने साथ बच्चे के लिए कपड़े भी लाती है, जिन्हें 'झुगलिया-टोपलिया' कहा जाता है। अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए रात्रि में बुआ गांव की स्त्रियों को बुलाकर गीत गवाती है, जिनको "धीनड़िया" कहा जाता है। रात्रि में गीत गाने के बाद बुआ की आरे से गुड़ बांटा जाता है । आधुनिक समय में गुड़ के स्थान पर पतासे भी बांटे जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि पुत्र-जन्म के अवसर पर प्रसन्नता प्रकट करने का सबसे अधिक अवसर बुआ को ही मिलता है।

पुत्र-जन्म के समय बिश्नोई सम्प्रदाय में एक अवसर और भी आता है, जब गीत गाकर प्रसन्ता प्रकट की जाती है, यह उत्सव "जळवा पूजण" का होता है। प्रत्येक पुत्र के जन्म के अवसर पर "जळवा पूजण" एवं गीत गाये जाने की परम्परा रही है, पर अब धीरे-धीरे कम होकर यह उत्सव प्रथम पुत्र के जन्म तक ही सीमित हो गया है। सम्प्रदाय के उनतीस नियमों में से एक नियम यह भी है कि घर में सन्तान उत्पन्न होने पर तीस दिनों तक सूतक रखा जाय। इन तीस दिनों में जच्चा घर का कोई भी कार्य नहीं करती। यहां तक कि उसके वस्त्र एवं खाने-पीने के बर्तन भी अलग रखे जाते हैं। पवित्रता एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से यह नियम बहुत ही उपयुक्त एवं वैज्ञानिक है। तीस दिनों के बाद हवन करके, कलश की स्थापना एवं पाहळ देकर जच्चा एवं बच्चे को पवित्र किया जाता है, जिसे "चळू" लेना कहते हैं। जच्चा-बच्चा दोनों को पाहळ दिया जाता है। पाहळ लेने के बाद ही बच्चा बिश्नोई कहलाने योग्य होता है। पाहळ को घर के सभी सदस्य लेते हैं और घर में इसके छींटे

भी दिये जाते हैं, जिससे घर शुद्ध हो जाता है। सन्ध्या को जच्चा "पीळ्ये" ओढ़कर तथा घड़ा लेकर तालाब पर जाती है। उस समय उसके साथ गांव की अन्य स्त्रियां भी होती हैं, जो गीत गाकर जाती हैं। तालाब के किनारे जल की पूजा की जाती है, जिसे "जळवा पूजण" कहते हैं। बाद में यहां पर गुड़ या घूघरी बांटी जाती है। "जळवा पूजण" का उत्सव ससुराल में ही होता है। जिस समय बहू नवजात पुत्र को लेकर ससुराल पहुंचती है, उसी समय "जळवा पूजण" का उत्सव होता है।

विश्नोई सम्प्रदाय में धीनड़िया गाते समय एवं "जळवा पूजण" के समय सर्व प्रथम "पीळ्ये" नामक गीत गाया जाता है। "पीळ्ये" ओढनों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पीळ्ये का सामान्य अर्थ पीले रंग से है परन्तु यहां इस शब्द का विशेष अर्थ है। "पीळ्ये" उस ओढने का नाम है, जिसे विश्नोइयों के यहां पुत्रवती स्त्री ही ओढ़ती है। सम्प्रदाय में स्त्रियां कई प्रकार के ओढने ओढती है, जैसे पीळ्ये, पोमचो एवं चूंदड़ी आदि। इनके ओढ़ने के भी अलग-अलग अवसर है। पुत्र जन्म से पूर्व "पोमचा" ओढ़ा जाता है, पुत्रवती "पीळ्ये" ओढ़ती है एवं भात के समय भाई अपनी बहिन के लिए चूंदड़ी लाता है।[3] "पीळ्ये" ओढ़ने की इच्छा प्रत्येक स्त्री की रहती है। प्रथम दिन जब कोई स्त्री "पीळ्ये" ओढ़ती है तो अनेक स्त्रियां उससे ईर्ष्या भी करती है और अनेक लोग उसकी प्रशंसा भी करते हैं।

विश्नोई सम्प्रदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि है। इसलिए इस गीत के प्रारम्भ में कृषि हेतु जमीन लेने की बात कही गई है।

गांव धणी आगे साहेबा अरज करोनी,
दो बीघा धरती देरावो गाडा मारु जी।[4]

जमीन मिलने के बाद, उसमें परिश्रम करना आवश्यक है। इसी कारण गीत में आगे परिश्रम का वर्णन किया गया है। फसल प्राप्त करने के लिए हल चलाना, बीज बोना एवं फसल तैयार होने पर उसमें निनाण करना आदि सब बातों का वर्णन गीत में हुआ है।[5]

पुत्र-जन्म के कुछ समय बाद ही घर की स्त्रियां जच्चा के लिए "पीळे" की मांग करती हैं। यह मांग इतनी जल्दी इसलिए की जाती है कि जच्चा के लिए जो "पीळ्या" लाया जायेगा, वह साधारण तो होगा नहीं। अतः असाधारण पीळे के लिए निश्चित रूप से कुछ अधिक समय चाहिये। "पीळ्ये" कहां से लाना है, उसमें किस प्रकार की कढ़ाई होगी, ये सब बातें जच्चा के पति को समझा दी जाती हैं।

दिल्ली सहर सूं साहेबा पोत मंगाओ,
जच्चा नै पीळ्यो रंगाओ गाडा मारु जी।

दिल्ली सहर सूं साहेवा गोटा मंगाओ,
जच्चा नै पीळो जड़ाओ गाडा मारु जी।
एड़ी छेड़ी तो साहेवा मोर पपहीया
बींच में चांदी गो चांद कुराओ गाडा मारु जी।[6]

एक माह वाद जच्चा "चळू" लेती है। उस समय वह बच्चे सहित हवन की "सीगड़ी" के पास बैठकर पाहळ ग्रहण करती है। यही वह अवसर होता है जब जच्चा पहली बार "पीळो" ओढ़कर आंगन में आती है। इसी समय उसके पीळे की प्रशंसा की जाती है।

पीळो तो ओढ़ जच्चा चळु तो लीनो,
जोसीड़ै पीळो सहरायो गाडा मारु जी। पीळो रंगाद्यो।।[7]

"जळ्वा पूजण" के दिन संध्या को जच्चा पीळो ओढ़कर, सिर पर घड़ा रखकर, स्त्रियों के समूह के साथ "जळ्वा पूजण" के लिए जाती है, तो गांव के सभी लोगों द्वारा उसके "पीळे" की प्रशंसा की जाती है।

पीळो तो ओढ़ जच्चा पाणी न चाली,
सगळै सहर सहरायो गाडा मारु जी। पीळो रंगाद्यो।।[8]

इस समय सभी लोगों द्वारा पीळे की प्रशंसा करना एवं प्रसन्न होना इस विपय की सार्वजनोपयोगिता प्रकट करता है। यही भारतीय जीवन का उच्चादर्श है।[9] इस तरह यह गीत जीवन के विविध आयाम एवं उच्चादर्श को प्रकट करता है। एक सुहागिन स्त्री के लिए पीळे का सर्वाधिक महत्त्व है। पीळे से संबंधित होने के कारण ही यह गीत महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए बिश्नोई सम्प्रदाय में जन्म के गीतों में इस गीत को सर्व प्रथम गाया जाता है।

पुत्र जन्म पर परिवार के सभी सदस्यों को विशेष प्रसन्नता होती है। इसी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए बधाइयाँ बाँटी जाती हैं। बधाई छोटे बच्चों को भी दी जाती है और ढाढ़ी एवं नाई को भी दी जाती है। बधाई सम्बन्धी गीत में इसी प्रसन्नता को प्रकट किया गया है। इस गीत में परिवार के बड़े सदस्यों से बधाई देने के लिए कहा गया है।

धीनड़ियै गा दादा (नाम) ओ, धीनड़ गी बधाई द्यो।
कोरा-कोरा नोट ढाढ्या नै बांटा, म्हे धीनड़ गी बधाई द्यां।।[10]

गीत में परिवार के सभी सदस्यों से बधाई मांगी जाती है और वे कुछ न कुछ अवश्य ही देने को कहते हैं। परिवार के सभी सदस्यों को बधाई के लिए कहना और उन सभी के द्वारा बधाई देने की बात कहने से यह स्पष्ट होता है

कि पुत्र जन्म की प्रसन्नता में सभी सम्बन्धियों की भागीदारी रहती है।

पुत्र जन्म की प्रसन्नता पर जहां बच्चों, ढाढ़ियों एवं नाई को बधाई दी जाती है वहां गांव के सभी घरों में भी कुछ न कुछ बांटा जाता है। पहले लोग घूघरी बांटते रहे हैं। आधुनिक समय में घूघरी के स्थान पर पतासे व मिठाई बांटी जाती है। इन वस्तुओं के बांटने पर एक तो परिवार के लोगों की प्रसन्नता प्रकट होती है और दूसरा इसके द्वारा गांव के सभी लोगों को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि अमुक के घर पुत्र जन्म हुआ है तथा साथ ही आपसी प्रेमभाव भी प्रकट होता है। घूघरी बांटने का कार्य नाई द्वारा सम्पन्न होता है। जब घूघरी बांटकर नाई वापस आता है तो जच्चा उससे पूछती है कि उसने घूघरी कहाँ-कहाँ बाँटी, तो वह कहता है -

बांटी जच्चा उरलै-परलै बास, बाई घर ढाल्यो छाबड़ो, जी म्हारा राज।
नाई कै गा वेटा पाछीलाय गुगरी, वेनड़ घर क्यूं ढाल्यो छावड़ो,
जी म्हारा राज।।[11]

कई बार ननद-भावज में खटपट हो जाती है। यही खट-पट इस गीत में अभिव्यक्त हुई है। भावज नहीं चाहती कि उसके यहां की घूघरी ननद के घर भी पहुंचे। इसलिए वह अपनी घूघरी वापस मंगाना चाहती है। बात ज्यादा न फैले, इसलिए पति स्वयं घूघरी वापस लाने जाता है। बहिन को अपने खानदान की प्रतिष्ठा की बहुत चिन्ता है। इसी कारण उसे घूघरी वापस देने का कोई दु:ख नहीं। पर उसे इस बात की चिन्ता अवश्य है कि कहीं इस बात का पता अन्य लोगों का न लग जाये। इसलिए वह अपने भाई से कहती है -

होळै बीरा, धीमो-बोल, देराणी-जेठाणी सुणसी, जी म्हारा राज।
तूं ए बीरा पाछो चाल, म्हे आपे ल्यावां गुगरी, जी म्हारा राज।।[12]

भावज के इस व्यवहार के पीछे ननद उसके खानदान को ही दोष देती है और घूघरी वापस कर देती है। उसके बाद वह स्वयं भाई के घर जाकर उससे अच्छी घूघरी बंटवाती है और अपनी भावज से कहती है -

तूं ए भावज बारै आय, मोतीड़ा गी बांटू गुगरी, जी म्हारा राज।
हूं सूं धनौती गी धी, मोतीड़ा गी बांटू गुगरी, जी म्हारा राज।
तूं ए भावज निरधनिया गी धी, उलटी मांगै गुगरी, जी म्हारा राज।
दुखै नणद मेरी डावड़ली आँख, सहर सहरावँ तेरी गुगरी, जी म्हारा राज।[13]

भावज तुम घर से बाहर आकर देखो, मैं कितनी अच्छी घूघरी बंटवा रही हूं। मैं उच्च कुल की होने के कारण इतनी श्रेष्ठ घूघरी बंटवा रही हूं और

तूं उच्च कुल की न होने के कारण बांटी हुई घूघरी वापस मंगवा रही हो। ननद के इस कार्य से भाभी अपने आप को शर्मिंदा अनुभव करती है। इसी कारण वह उसके सामने नहीं आना चाहती और आँख दर्द का बहाना बना लेती है। इस तरह जन्म के गीतों में एक ओर पुत्र-जन्म के अवसर पर अपने मन की प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए घूघरी बांटे जाने का वर्णन हुआ है तो दूसरी ओर कंजूस एवं ईर्ष्यालू भावज तथा पारिवारिक गौरव को सर्वोपरि समझने वाली ननद का चित्रण हुआ है।

ननद-भाभी में प्रायः परिहास चलता ही रहता है। पर विशेष अवसरों पर कभी-कभी "नेग" के लिए झगड़ा भी हो जाता है। जन्म से सम्बन्धित "पोमचे" नामक गीत में इसी का चित्रण हुआ है। भाई के पुत्र हुआ है, इससे बहिन को अत्यधिक प्रसनता हुई है। वह गांव की स्त्रियों को बुलाकर धीनड़िया गवाती है और अपनी ओर से गुड़ बंटवाती है। सभी कार्य सम्पन्न होने के बाद बहिन अपने घर जाने की तैयारी करती है।उसी समय घर के लोग बहू से "नेग" देने को कहते हैं। इस समय भाभी ननद को बहुत कम देना चाह रही है। घर के सभी सदस्य बार-बार बहू से नेग देने को कहते हैं, पर वह इन्कार करती रहती है। अन्त में पति भी कहता है-

बोल्यो बीरो जी गौरी नै, दे द्यो गौरी पोमचो।
बाई आई धीनड़िया गै कोड, हट मांड्यो नणद बाई पोमचो।[14]

पति के कहने से तथा अन्य पोमचा लाने के आश्वासन से भाभी ननद को पोमचा तो दे देती है पर पुनः पीहर में न आने की बात भी कह देती है।

आल्यो नणद बाई पोमचो, भळै मत आई म्हारै बार।
हट मांड्यो नणद बाई पोमचो।[15]

पुत्र जन्म के समय दाई, नाई एवं ननद सभी आते हैं। दाई प्रसव के लिए आती है, नाई बधाई के लिए आता है और ननद "धीनड़िया" गवाने आती है। इन सभी को इस अवसर पर कुछ न कुछ दिया जाता है। इसका वर्णन भी एक गीत में हुआ है।

जल्म सुधारयो ए दाई, बधाई मांगे ए नाई,
मंगल गायो ए म्हारी नणद बिजळी बाई।[16]

जच्चा, दाई एवं नाई को तो पूरा नेग देती है पर ईर्ष्या के कारण ननद को कम देती है। इसी कारण ननद रूठ कर अपने ससुराल रवाना हो जाती है।

राजी होयग्यी ए दाई, राजी होयग्यो ए नाई,
रूसी रै चाली, म्हारी नणद बिजळी बाई।[17]

आज शिक्षा का जितना प्रचार-प्रसार हुआ है, उतना पहले नहीं था। शिक्षा के

थे जुग जीओ रामू जी गा सिव, कूख पुराई म्हारै जीव री।
थे जुग जीओ राजू जी री धीव, वंस बधायो म्हारै बाप री।[22]

शिक्षा के अभाव में तथा आने-आने के साधन सीमित होने के कारण पहले स्त्रियां गांव की दाई से ही प्रसव करवा लेती थी परन्तु आज शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण अनपढ़ दाई पर विश्वास कम होता जा रहा है। अनपढ़ दाई की अपेक्षा नर्स एवं लेडी डॉक्टर के प्रति विश्वास बढ़ता जा रहा है। यही आधुनिक विचार एक बिश्नोई लोकगीत में अभिव्यक्त हुआ है।

जच्चा राणी नै इक जुल्म किया, अंगरेजी जापा चालू किया।
दाई-माई ने बुलाणा बंद किया, मेम को बुलाणा चालू किया।।[23]

परम्परावादी लोग इस परिवर्तन को एक "जुल्म" समझते हैं। पर परिवर्तन ही जीवन-विकास का मुख्य आधार हैं और यही जीवन का सत्य है। परिवर्तन को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। लोकगीत जीवन की अभिव्यक्ति है। इसलिए जीवन में होने वाले परिवर्तन की अभिव्यक्ति लोकगीतों में होनी आवश्यक है। परिवर्तन को 'जुल्म' समझकर लोकगीत उससे दूर नहीं रह सकते। आधुनिक समय में संयुक्त परिवार प्रथा के समाप्त होने के कारण तथा आधुनिक विचारधारा के प्रभाव के कारण आजकल विवाह होते ही बेटा एवं बहू मां-बाप से अलग रहने लगते हैं। परिवर्तित विचारधारा के आधार पर ही आधुनिक समय में बहू का विश्वास ससुराल की अपेक्षा पीहर के लोगों पर बढ़ता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में यदि बहू का प्रसव ससुराल में हो तो वह पीहर से ही अपने संबंधियों को बुलाना पसंद करती है।

सासू नै बुलाणा बंद किया, अपणी मां नै बुलाणा चालू किया।
जच्चा राणी नै इक जुल्म किया, अंगरेजी जापा चालू किया।
नणद को बुलाणा बंद किया, अपणी बहण नै बुलाणा चालू किया।[24]

इस गीत में युगानुरूप परिवर्तित होने वाली सामाजिक धारणाओं का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त पत्नी शासित पति पर भी परोक्ष रूप से करारा व्यंग्य है।[25] पत्नी द्वारा शासित होना भी आज के युग का प्रभाव है।

बिश्नोई सम्प्रदाय एक आडम्बरहीन सम्प्रदाय है। सरलता एवं सादगी इस सम्प्रदाय की मुख्य विशेपताएँ हैं। इसी कारण इस सम्प्रदाय में मुण्डन, कर्णछेदन, नामकरण एवं यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का कोई महत्त्व नहीं है और इन संस्कारों से संबंधित कोई गीत भी सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है। प्रसव के बाद तीस दिन तक सूतक रखना बिश्नोई धर्म के उनतीस नियमों में है। इन तीस दिनों में

शारीरिक कमजोरी को दूर करने हेतु अजवायण एवं गोंद के साथ अत्यधिक मात्रा में जच्चा को घी खिलाने की परम्परा समाज में रही है। इसी से संबंधित "अजवायण" नामक गीत है। पुत्र-जन्म हर दृष्टि से प्रसन्नता का विषय रहा है। इसीलिए परिवार के बड़े सदस्य अपने मन की प्रसन्नता को बधाई बांट कर प्रकट करते हैं। बधाई के ये भाव सम्प्रदाय में प्रचलित "बधाई" नामक गीत में अभिव्यक्त हुए हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में पुत्र-जन्म से उत्पन्न प्रसन्नता को जच्चा "पीळो" ओढ़कर प्रकट करती है। जच्चा की इस प्रसन्नता में समाज भी भागीदार बनता है और वह जच्चा के पीळे की प्रशंसा के माध्यम से उसके भाग्य की प्रशंसा करता है। सम्प्रदाय में "पीळो" ओढ़ना पुत्रवती होने का प्रतीक है। इससे स्त्री का परिवार एवं समाज में महत्त्व बढ़ जाता है। यही कारण है कि गीतों में "पीळो" नामक गीत का अधिक महत्त्व है और वह सब गीतों से पहले गाया जाता है। यद्यपि बिश्नोई सम्प्रदाय में जन्म से सम्बन्धित गीत अपेक्षाकृत कम हैं पर इन गीतों में सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यताएँ एवं सामाजिक रीति-रिवाज आदि की अभिव्यक्ति समग्रता के साथ हुई है।



सन्दर्भ

1. राजस्थानी साहित्य का इतिहास-पुरुषोत्तम लाल मेनारिया, पृ. 150
2 लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन-डॉ. कुलदीप, पृ 58
3. आज सहर में ए बीरा झिलमिल हो रहया
   आया-आया मां गा जाया बीर, हीरा जड़ लाया चूंदड़ी।
   (बिश्नोई लोकगीत संस्करण 2001-डॉ. बनवारीलाल सहू, पृ. 69)
* बिश्नोई लोकगीतों के समस्त उद्धहरण बिश्नोई लोकगीत के संस्करण 2001 से हैं।
4 बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ 23
5. बिश्नोई लोकगीत " पृ 23
6 बिश्नोई लोकगीत " पृ 24
7 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 24
8 बिश्नोई लोकगीत " पृ 24
9. लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा-डॉ. मनोहर शर्मा, पृ 77
10. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 29
11. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 27
12. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 27-28
13. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 28
14. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 29
15. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 29
16. बिश्नोई लोकगीत " पृ 30

17. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 30
18. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 25
19 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 25
20 लेखक के निजी संग्रह से
21 लेखक के निजी संग्रह से
22. लेखक के निजी संग्रह से
23. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 30
24. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 30
25. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन-डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 35

विवाह के गीत

युवावस्था जीवन का बसन्तकाल है और विवाह इस बसन्त काल का सबसे मीठा फल है। मानव जीवन में विवाह ही सबसे अधिक प्रसन्नता का अवसर है। यह मानव समाज का एक आवश्यक संस्कार है, जो सम्पूर्ण संसार में प्रचलित है। विवाह के द्वारा स्त्री-पुरुष धर्म तथा नियम से पति-पत्नी के रूप में आबद्ध हो जाते हैं। इसीलिए विवाह को एक धार्मिक प्रथा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह संस्कार दो अनजान प्राणियों के मिलन का पुनीत पर्व है। विवाह के समय केवल वर-वधू के घरों में ही आनंदमय वातावरण नहीं रहता अपितु इन दोनों परिवारों से 'संबंधित परिवारों में भी उल्लास छा जाता है। अनेक परिवारों के मन-मुटाव इस अवसर पर दूर हो जाते हैं। "इस प्रकार विवाह-संस्कार वर-वधू के दो हृदयों के मिलन का संस्कार होने के साथ-साथ समाज में व्याप्त वातावरण को स्नेह सुधा से सिंचित करने का अवसर प्रदान करता है।"[1]

विवाह के अवसर पर वर एवं कन्या के मित्र तथा संबंधी बड़े ही हर्ष के साथ उत्सव में भाग लेने के लिए एकत्रित होते हैं। विभिन्न जातियों में विवाह की प्रणाली एवं वैवाहिक रस्में अलग-अलग होती हैं। इन सभी रस्मों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। स्त्रियों के द्वारा ही ये रस्में आज तक जीवित है। स्त्रियां विवाह की इन रस्मों को गीतों द्वारा सम्पन्न करती है और साथ ही अपने मन की उमंग को भी प्रकट करती है। "विवाह के अवसर पर स्त्रियां गीत गाकर विवाह को रोचक, मांगलिक एवं कारुणिक बना देती है।"[2]

बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह के लिए कभी भी किसी प्रकार के मुहूर्त का महत्त्व नहीं रहा है। इससे सम्प्रदाय के आडम्बर रहित होने का प्रमाण भी मिलता है। विवाह का दिन निश्चित करने में वर-कन्या के अभिभावकों की सुविधा ही प्रमुख रहती है। वर एवं कन्या के अभिभावकों की मौखिक वार्ता के अनुसार कन्या पक्ष के संबंधी एवं मित्र एकत्रित होकर विवाह का दिन तय कर लेते हैं।

विवाह की तिथि में जितने दिन बीच में होते हैं, उतनी ही गांठे सूत के धागे में लगाई जाती है, जिसे "डोरा करना" कहते हैं। कन्या पक्ष के यहां दो डोरे किये जाते हैं, जिनमें से एक कन्या के घर रहता है और दूसरा नाई के हाथ वर पक्ष के यहां भेजा जाता है। "डोरा" आने की प्रसन्नता में वर पक्ष की ओर से नाई को रुपये एवं वस्त्र आदि के रूप में "बधाई" दी जाती है। इस दिन से ही दोनों घरों में सफाई एवं विवाह की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। दोनों पक्षों की ओर से अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों को नाई द्वारा "पीळे चावळों" से निमंत्रण देना प्रारम्भ कर दिया जाता है। आधुनिक समय में शिक्षा के प्रसार के कारण निमंत्रण पत्र भी भेजे जाते हैं।

अन्य जातियों की तरह बिश्नोई सम्प्रदाय में भी विवाह अनेक रस्मों द्वारा सम्पन्न होता है और विवाह की सभी रस्में गीतों द्वारा सम्पूर्ण होती हैं। विवाह की विभिन्न रस्मों पर यदि गीतों की स्वर लहरियां न थिरके तो विवाह की सारी रोनक ही फीकी हो जाती है। इसीलिए लोक गीतों को प्रकृति की अनुपम भेंट माना गया है। बिश्नोइयों के घरों में वातावरण को वैवाहिक बनाने में लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में वर एवं कन्या पक्ष के अधिकतर गीत तो एक जैसे ही हैं पर कुछ गीत कन्या पक्ष से संबंधित है और कुछ वर पक्ष से। विवाह की अधिकांश रस्में कन्या के घर में ही सम्पन्न होती है। अत: वर पक्ष की अपेक्षा कन्या पक्ष के गीत अधिक है। वर पक्ष के गीतों में जहां हर्ष की प्रधानता रहती हैं वहां कन्या पक्ष के गीतों में हर्ष के साथ करुणा का पुट भी रहता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में वर एवं कन्या पक्ष के गीतों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :-

वर पक्ष	कन्या पक्ष
1. डोरा भधारने के गीत	1. डोरा भधारने के गीत
2. बिनायक के गीत	2. बिनायक के गीत
3. बनोळे के गीत	3. बनोळे के गीत
4. बनड़े	4. बनड़े
5. भात के गीत	5. भात के गीत
6. रातीजगे के गीत	6. रातीजगे के गीत
7. बारात प्रस्थान के गीत	7. तोरण के गीत
8. मुकलावे के गीत	8. विदाई के गीत

विवाह की विभिन्न रस्मों के आधार पर बिश्नोई सम्प्रदाय के

विवाह संबंधी समस्त गीतों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :-

1. डोरा भधारने के गीत
2. बिनायक के गीत
3. बनोळे के गीत
4. बनड़े
5. भात के गीत
6. रातीजगे के गीत
7. बारात प्रस्थान के गीत
8. तोरण के गीत
9. विदाई के गीत
10 मुकलावे के गीत

1. डोरा भधारने के गीत (प्रथम दिवस के गीत)

विश्नोई सम्प्रदाय में विवाह के गीत गाने प्रारम्भ करने का भी एक निश्चित दिन है। विवाह से लगभग सात-आठ या दस-बारह दिन पूर्व गीत गाने प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। यह अवधि निश्चित नहीं है। अपनी सुविधानुसार विवाह से कुछ दिन पूर्व रात्रि में वर एवं कन्या के पिता द्वारा अपने मित्रों एवं संबंधियों को नाई द्वारा अपने घर पर आमन्त्रित किया जाता है और उन सभी को गुड़ बांटा जाता है। इसी रस्म को "डोरा भधारना" कहते हैं। यह रस्म वर एवं कन्या के यहां समान रूप से सम्पन्न होती है। विवाह से सम्बन्धित डोरे में उतनी ही गांठें होती हैं, जितने दिनों के बाद विवाह होना होता है। यह डोरा वर एवं कन्या दोनों पक्षों के घरों में परिवार के वयोवृद्ध पुरुष के पास रहता है और वह इसे अपनी पगड़ी से बांधकर रखता है। वह प्रत्येक दिन इस डोरे की एक गांठ खोलता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के अभाव में विवाह के दिन को याद रखने का यही डोरा एक आधार रहा है। डोरा भधारने के द्वारा सब मिलकर यह निश्चित कर लेते थे कि विवाह में कितने दिन शेष रहे हैं, जो गांठें खोली गई है, वे सही खोली गई हैं। "डोरा भधारने" का दिन निश्चित करने में सुविधा ही प्रमुख रहती है। इसी रात्रि से घर में गीत गाये जाने प्रारम्भ हो जाते हैं। रात्रि में गांव की स्त्रियां अलग-अलग समूह में गीत गाकर आती हैं और जब सब एकत्रित हो जाती हैं, तो सब मिलकर देर रात तक आंगन में गीत गाती रहती हैं। समूह में आने वाली सभी स्त्रियां एक विशेष गीत गाकर आती हैं, जिसे "भधावा" कहते हैं। भधावे से तात्पर्य वृद्धि से है। इसलिए इस गीत में वर

एवं कन्या के सुख-समृद्धि एवं वंश की वृद्धि की कामना की जाती है। वंश की मंगल कामना के लिए सर्व प्रथम इन्द्र एवं सूर्य आदि देवताओं को स्मरण किया जाता है। बिश्नोई सम्प्रदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि विकास से ही परिवार की उन्नति सम्भव है और कृषि का विकास वर्षा से ही हो सकता है। इन्द्र वर्षा का देवता है। अतः गीत के प्रारम्भ में इन्द्र को स्मरण करना स्वाभाविक ही है। इसी तरह सूरज से संसार का अंधकार दूर होता, अज्ञान का नाश होता है और ज्ञान का प्रकाश फैलता है।

भधै तो भधावो म्हारै इन्द्र जी नै, इन्द्र जी वुठै धरती निपजै।
भधै तो भधावो म्हारै सूरज जी नै, सूरज उग्या कूल चानणो जी।[3]

कृषि के साथ-साथ पशु-पालन भी विश्नोइयों का मुख्य व्यवसाय रहा है। पशुधन भी आर्थिक स्थिति का आधार रहा है। इसी कारण पशु-धन में वृद्धि की बात इस गीत में कही गयी है।

भधै तो भधावो म्हारी भैंस्यां नै, जांरा सोनैगा विलोवणा जी।
भधै तो भधावो म्हारै धोळिया नै, जांरा ए जाया धोळा हळ वगै जी।।[4]

गीत के अन्त में यह मंगल कामना की जाती है कि

भधै तो भधावो म्हारी बहुआ नै, जांरा ए जाया हिंडै पालणै जी।
भधै तो भधावो म्हारी सासु जी नै, जांरा ए सान्दया लाड्डू जीमस्यां।[5]

लोकगीतों में जीवन की समग्रता अभिव्यक्त होती है। यही कारण है कि बिश्नोई सम्प्रदाय के विवाह सम्बन्धी गीतों में जब स्त्रियां रात्रि में घर के आंगन में बैठकर गीत गाती हैं तो उनमें वे अन्य विषयों के साथ-साथ वर और कन्या के पिता को कर्त्तव्य बोध कराती हुई विवाह की तैयारी के संबंध में भी संकेत करती रहती है। गीतों के द्वारा घर में विवाह की चहल-पहल प्रारम्भ हो गई है। वातावरण आनंदमय हो जाता है। विवाह का समय निकट आ रहा है। इसीलिए विवाह की तैयारी के लिए "सुए" के माध्यम से वर एवं कन्या के पिता को सचेत किया जा रहा है।

म्हारै आंगण आम्बो सुअटो बोल रह्यो।
थे तो सुत्या जागो सिव रामू जी गा।।[6]

बिश्नोई सम्प्रदाय में सगाई भी बड़े सादे ढंग से सम्पन्न होती है। सम्बन्ध तय होने के बाद अपनी सुविधानुसार वर या कन्या का पिता अपने घर में मित्रों एवं संबंधियों को सगाई के लिए निमंत्रण देकर बुलाता है और कन्या का पिता वर के पिता को नारियल एवं सवा रुपया देता है। यहीं लड़के-लड़की के

नामों की घोषणा की जाती है। इसके बाद उपस्थित व्यक्तियों को गुड़ बांटा जाता है और संबंधी आपस में गले मिलते हैं। इसी के साथ सगाई की रस्म पूर्ण हो जाती है। इसीलिए प्रथम दिवस के एक गीत में नारियल के लाने एवं स्वीकार करने के माध्यम से वर-कन्या के गांवों का परिचय दिया जाता है।[7] "राजस्थान जैसी मरुभूमि में भी धार्मिक कार्य नारियल-सुपारी जैसी वस्तुओं के बिना सम्पन्न नहीं होते, नारियल-सुपारी जो सुदूर दक्षिण में पैदा होते हैं, परन्तु उत्सव के दिनों में पूरे देश के एक सांस्कृतिक सूत्र में बन्धे होने का स्मरण दिला जाते हैं।"[8]

वर-कन्या के नामों एवं गांवों के परिचयात्मक गीत के बाद "चावळ" गाया जाता है, जिसमें यह अभिव्यक्त किया जाता है कि विवाह में किस-किस को निमंत्रण देना है। बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह का नियंत्रण "पीळे चावळों" द्वारा ही देने की परम्परा रही है। इसी कारण यह गीत "चावळ" नाम से प्रसिद्ध है।[9] संबंधियों एवं मित्रों को निमंत्रण पहुंचाने के बाद कन्या के पिता को कन्या के गहनों की चिन्ता होने लगती है। लेकिन बिश्नोइयों में अधिकांश गहने ससुराल की ओर से ही आते हैं। इसी तथ्य का संकेत एक गीत में किया गया है।

घरै धीवड़ी कंवारी ओ राज, सर सौनो त्यावण चाल्या।
थे सगा जी पाछा घिर जावो ओ राज, सेर सोनो म्है लायस्या।[10]

एक अन्य गीत में भी वर-पक्ष से गहने एवं "पड़ला" लाने के लिए कहा गया है।

गहणां लायज्यो, थे भल आयज्यो,
× × × × ×
पडलो लायज्यो, थे भल आयज्यो,
थारै पडला री पाट हजारी ओ राज।[11]

कन्या का पिता चाहता है कि उसके द्वार पर जो बारात आये, वह बहुत सजी-धजी होनी चाहिये। सुन्दर वाहन, सभ्य बाराती एवं भारी पडला लेकर आने से ही कन्या पक्ष की शोभा बढ़ती है। इसीलिए गीत में कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को सन्देश भेजा जाता है।

घोड़ला लायज्यो, थे भल आयज्यो,
थारै घोड़ला री हींस हजारी ओ राज।
× × × × ×
भाइड़ा लायज्यो, थे भल आयज्यो,
थारै भाइड़ा गी मोज हजारी ओ राज।।[12]

योग्य वर प्राप्त करने के लिए पार्वती को भी कठोर तपस्या

करनी पड़ी थी। ऐसी परिस्थिति में साधारण लड़की को यदि योग्य वर के लिए तपस्या करनी पड़े, तो कोई आश्चर्य नहीं है। योग्य वर के प्राप्त होने पर कन्या की ओर से की जाने वाली तपस्या की ओर इस गीत में संकेत किया गया है।

इण बनड़ै गै हर के कोडे,
बनी म्हारी निरणी गंवर जंवारी ओ राज।[13]

"डोरा भधारने" के गीतों में वंश की मंगल कामना, वर-कन्या के पिता को विवाह के प्रबन्ध के लिए सचेत करना, मित्रों एवं संबंधियों को निमंत्रण देना, कन्या के गहनों का प्रबन्ध करना तथा सुन्दर बारात की व्यवस्था आदि सभी बातों का वर्णन किया जाता है। इतने विषयों से सम्बन्धित गीत गाते-गाते काफी समय व्यतीत हो जाता है। अतः गीत गाने वाली स्त्रियां घर जाने की तैयारी करने लगती हैं। पर जाने से पूर्व कुछ हास्य-विनोद भी गीतों के माध्यम से हो जाता है। कुछ ऐसे गीत भी गाये जाते हैं, जिनमें शिष्ट गालियों का प्रयोग किया जाता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह की कई रस्मों पर गालियां गायी जाती हैं। इन गालियों में कटुता न होकर प्रेम-रस घुला रहता है। गालियों की शिकार अधिकतर भाभी, बहिन एवं बुआ होती हैं।

म्हारै हरखे बनड़ो परणी जै, म्हारै कोडै बनड़ो परणी जै।
म्हारै बनड़े गै भदवाणी में, नगरी में बाजा बाजै जी।
रामू चढ़ग्यो डागळै, कांदा रोटी खावै जी।
रामू गी गोरड़ी छाछळी, गधा चरावण जावै जी।
गधे ठोकी लात गी, सात गळेटा खावै जी।[14]

साधारण समय में गाली देने पर व्यक्ति नाराज होता है पर विवाह के समय गाली न गाने पर नाराज हो जाता है। इसका कारण गीतों की गालियों में घुला हुआ प्रेम ही है।

घर जाने से पूर्व वर या कन्या की दादी, तायी या बुआ, स्त्रियों को गुड़ बांटती है। यह गुड़ सम्मान एवं प्रेम का प्रतीक होता है। इस बात का वर्णन भी गीतों में किया गया है।[15]

गुड़ लेने के बाद जब स्त्रियां रवाना होने लगती है, तो वे चलते-चलते फिर "भधावा" गाती है, जिसमें वंश की मंगल कामना ही प्रमुख रहती है। यह "भधावा" हर रात्रि को सब गीतों के अन्त में गाया जाता है।

2. बिनायक के गीत

बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह से लगभग पांच-सात दिन पूर्व

"विनायक बैठाया" जाता है अर्थात् गणेश जी की स्थापना की जाती है। विवाह का कार्य बिना किसी विघ्न के सम्पन्न हो जाये, इसी उद्देश्य से गणेश जी को स्मरण किया जाता है। कभी-कभी तीन दिन पूर्व भी विनायक बैठाया जाता है। सम्प्रदाय में बिनायक बैठाने का कोई दिन निश्चित नहीं है। इसमें सुविधा ही प्रमुख है। वर एवं कन्या के यहां अलग-अलग दिन भी बिनायक बैठाया जाता है। इस दिन सन्ध्या को वर एवं कन्या के उबटन लगायी जाती है। यह कार्य विवाह के दिन तक चलता रहता है। गेहूं-मूंग एवं हल्दी को पीसकर उबटन तैयार की जाती है, जिसका वर्णन एक गीत में हुआ है।

जामी म्हारा पोट पिलाण, जायज्यो मेड़तै।
मेड़तीय रा गेंहूंड़ा मोलाय, हल्दी ओ हड़हड़ी।
बडा म्हारा पोट पिलाण, जायज्यो मेड़तै
मेड़तीय रा मूंग मोलाय, हल्दी ओ हड़हड़ी।[16]

विश्नोई सम्प्रदाय में बिनायक बैठाने की तैयारी में अनेक रस्में पूरी करनी पड़ती है और सभी रस्मों से संबंधित गीत गाये जाते हैं। इन गीतों के द्वारा विवाह के कार्य में परिवार एवं समाज की भागीदारी अभिव्यक्त हुई है।

विवाह एक सामाजिक विधान है। इसमें परिवार के अधिक से अधिक सदस्य हाथ बंटाते हैं। इसीलिए एक गीत में बताया गया है कि उबटन के लिए गेहूं लाने का काम पिता करते हैं तो उसे तैयार मां करती है और मूंग लाने का कार्य ताऊ करते हैं तो उसे तैयार ताई करती है। मामा-मामी कोई अन्य कार्य करते हैं।

मामा म्हारा पोट पिलाण, जायज्यो मेड़तै
मेड़तीय री हल्दी मोलाय, हल्दी ओ हड़हड़ी।
मामी म्हारी हल्दी हुनारै, हल्दी ओ हड़हड़ी।
ओ रंग लाडलड़ै रै अंग सोय।[17]

विभिन्न संबंधियों द्वारा विवाह के कार्यों में प्रेम पूर्वक भाग लेने से ही वैवाहिक वातावरण आनंदमय बनता है और इससे बनड़ा-बनड़ी और अधिक प्रसन्न दिखाई देने लगते हैं। इसी प्रेम एवं उबटन से उनके शारीरिक रंग में निखार आता रहता है।

बिनायक बैठाने के लिए "बिनायक" गाया भी जाता है। विवाह से संबंधित कार्यों के लिए बिनायक जी से प्रार्थना की जाती है।

चालो ए विनायक जी आप्पा खुरसाणै रे घर चाला

आघा आघा घोड़ला मुलावा ओ राज, म्हारा विड़द विनायक।[18]

विश्नोई सम्प्रदाय में उबटन लगाने का कार्य सामान्यतः नाई अथवा नायन द्वारा ही होता है। पर "विनायक बैठाने" वाले दिन प्रारम्भ में सात स्त्रियां वर तथा कन्या के उबटन लगाती है। जो-जो स्त्री उबटन लगाती है, उसका नाम ले-लेकर गीत गाया जाता है। उबटन में तेल भी मिलाया जाता है। इसलिए उबटन लगाने को "तेल चढ़ाणा" भी कहते हैं।

ल्याई ए तेलण तेल, तेल छपाकी रे लो।
रामू घर धीवड़िया रामी बाई, तेल छपाकी रे लो।
राजू घर गी वहुड़ियां "जाणी" तेल चढ़ायो।[19]

इस प्रकार सात स्त्रियों द्वारा उबटन लगाने से विवाह में पूरे समाज की सांझेदारी प्रकट होती है। उबटन में जो तेल डाला जाता है, वह तेली से मंगाया जाता है, इससे भी सामाजिकता एवं समानता की भावना ही अभिव्यक्त होती है।

तूं तो तेलीड़ा रे तेल ले आय, चम्पेलो म्हांरै घंरै घणो।[20]

एक ओर "लाडलड़ै एवं लाडलड़ी को पीठी लगाई जा रही है तो दूसरी ओर स्त्रियां गीत गा रही है एवं बच्चे मस्ती से आंगन में खेल रहे हैं। इससे सारा वातावरण आनंदमय बन जाता है। इस आनंदमय वातावरण के कारण "वने-बनी" के पारिवार के सदस्यों एवं उनके स्वयं के आनंद की कोई सीमा नहीं रहती।

थारै दादै संजोयो ओगसणो, थारी दादी रै मन कोड घणो।
चम्पलै री डाली ए बांस घणो, मरवै गी डाळी ए बांस घणो।
लाडलड़ै रै मन में कोड घणो, लाडलड़ी रै नैणा नींद घणी।।[21]

पीठी लगाने से "वने-वनी" के रूप-रंग में निखार आने लगता है और मन की प्रसन्नता से यह निखार और अधिक बढ़ जाता है। अपने रूप-रंग के निखार के लिए "बनड़ा" सारा श्रेय अपनी दादी, मां एवं चाची आदि को देता है और अपने काले होने का कारण हँसी में भाभी को बतलाता है।

तूं तो धोळो रे राय जादा बनड़ा, किसोड़ै गुण।
म्हारी माता जी नुहाया ओ राज, चांदी के रै रुंख तळै।
तूं तो काळो रायजादा बनड़ा, किसोड़ै गुण।
म्हारी भावजड़ी नुहायो ओ राज, सुरमै के रे रुंख तळै।[22]

गीत के अन्त में देवर-भाभी का विनोद ही अभिव्यक्त हुआ है, जो सनातन परम्परा से चला आ रहा है। पीठी लगाने के बाद "बनड़े-बनड़ी" द्वारा

स्नान किया जाता है, उस समय स्नान से संबंधित गीत गाया जाता है।

अव्वळ-खव्वळ म्हारी नदी रे वहवै, म्हारी नदी रे वहवै।
बगुलौ गळ-मळ नहावै जी।
बुगलै कागद भेज्यो रायजादा-भेज्यो रायजादा।
गैर भगत मत नहावो जी।[23]

स्नान-वर्णन के साथ-साथ "बुगले" को "बुगली" के बारे में होने वाली चिन्ता को भी व्यक्त किया गया है। बनड़ा-बनड़ी एक - दूसरे से दूर रहने पर भी एक दूसरे के बारे में चिन्तित रहते हैं और एक पल भी वे एक दूसरे को अपने चित से दूर नहीं कर पाते।

नहाय-धोय लाडलो बैठो बाजोट, कोई आमण-दुमणो।
कांई म्हारा लाडला मांगै सिर पाग, कांई चढ़ण घोड़लो।
नां ई म्हारा बाप जी मांगू सिर पाग, नां ई चढ़ण घोड़लो।
मांगू म्हारा बाप जी रामू जी री धीव, बा ही म्हारै चित चढ़ी।[24]

"नहाय-धोय" बनड़ा-बनड़ी आरती के लिए बाजोट पर बैठते हैं। आरती बुआ या बहिन द्वारा ही की जाती है। आरती करने के बदले बुआ को पर्याप्त नेग मिलता है। कभी-कभी इसको लेकर "ननद-भाभी" में नोक-झोंक भी हो जाती है पर भाई स्थिति को सम्भाल लेता है।

जित बैरी जित रामू जी रो सिव, कर म्हारी भुआ आरती जी।
आरतड़ो बीरा कियो न जाय, भावज कोसा बोलिया जी।
आँगणीयो बाई परै रे निवार, घड़ी दो घड़ी गी आरती जी।[25]

आरती के साथ ही "विनायक बैठने" के दिन की सभी रस्में एवं गीत पूरे हो जाते हैं। इस दिन से "बनड़ा-बनड़ी" प्रायः घर में ही रहते हैं और बनड़ा अपने पास लोहे का "गेडिया" रखना प्रारम्भ कर देता है।

३. बनोळे के गीत

जिस दिन "विनायक बैठाया" जाता है, उसी सन्ध्या को बनड़े या बनड़ी का निकट का कोई संबंधी बनड़े या बनड़ी को भोजन का निमंत्रण देता है, इसी निमंत्रण को बनोळा कहते हैं। "बनोळे" में घर के सभी सदस्य एवं आये हुए मेहमान भी भोजन करने जाते हैं। बनड़े या बनड़ी के हम उम्र के साथी एवं बच्चे भी बनड़े या बनड़ी के साथ भोजन करने जाते हैं, जिन्हें निमंत्रण देने का उत्तरदायित्व बनड़े या बनड़ी का ही होता है। विश्नोई सम्प्रदाय में विनायक बैठाने के दिन से लेकर विवाह से प[illegible] संबंधियों [illegible] दिये जाते हैं। इस प्रथा

से भी विवाह की सामाजिकता एवं आपसी स्नेह की भावना ही परिलक्षित होती है। सभी के भोजन करने के उपरान्त बनड़े या बनड़ी को नारियल एवं कुछ रुपये भेंट करके विदाई दी जाती है। स्त्रियां गीत गाकर बनड़े-बनड़ी को उनके घर पहुंचाती हैं। घर पहुंचने पर बनड़े-बनड़ी की दादी या बुआ सभी स्त्रियों को गुड़ बांटती है एवं बनड़े-बनड़ी की आरती करती है।

"बनोळे" के गीतों में सर्वप्रथम जो गीत गाया जाता है, उसमें बनोळे देने वाले का परिचय, भोजन कराने की व्यवस्था एवं साथ ही बनड़े-बनड़ी के गुणों का वर्णन होता है।

पूछै म्हारी राय बनै गी मां, आज बनोळो कण निवतयो।
(गांव का नाम) में राजू जी रा सिव, आज बनोळो वां निवतयो।
जा घर (जाति) दे नार, भला रे जुगत सूं जीमाया।[26]

अर्थात् बनड़े की मां यह पूछती हैं कि आज बनोळे का निमन्त्रण किसने दिया है? जवाब में कहा गया है कि अमुक गांव के राजू जी के पुत्र ने बनोळा दिया है और उनके घर में अमुक जाति की पत्नी है, जिसने सबको बहुत अच्छी व्यवस्था से भोजन करवाया है।

"बनोळे" के घर के द्वार पर पहुंचते ही स्त्रियां बनड़े या बनड़ी की बुआ से आरती के लिए प्रार्थना करती है।

आरतड़ो कर भुआ, लाडो बाहयर खड़यो।
थारै बनड़ै रा चिंत्या हुआ, लाडो बाहयर खड़यो।।[27]

इसी गीत के अन्त में स्त्रियां मौज-मस्ती में गाली भी गाने लगती है।

आरतड़ो कर ए मामी, लाडो बाहयर खड़यो।
थारै लेग्या मोडा स्वामी, लाडो बाहयर खड़यो।।[28]

बिश्नोई सम्प्रदाय मे बनोळे के गीतों में प्रथम एवं अन्तिम गीत के अतिरिक्त किसी भी गीत को गाने की अनिवार्यता नहीं है। प्रथम गीत के बाद घर पहुंचने तक बनड़े ही गाये जाते हैं, जिनमें बनड़े-बनड़ी के गुणों का ही वर्णन रहता है। ये बनड़े कितने गाने हैं और किस क्रम में गाने हैं, यह सब गाने वाली स्त्रियों पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में कोई बन्धन नहीं है।

4. बनड़े

बिश्नोई सम्प्रदाय के विवाह संबंधी गीतों में संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक गीत "बनड़े" ही हैं। ये गीत गाने में अन्य गीतों की तुलना में सरल

भी हैं। इनमें विषय-वर्णन बहुत सरलता के साथ हुआ है। विवाह होने से पूर्व लड़के-लड़की को बना-बनी या बनड़ा-बनड़ी कहा जाता है। बनड़ा-बनड़ी की प्रशंसा से संबंधित गीत बनड़े कहलाते हैं। अन्य गीतों की तरह ये समय के बन्धन में जकड़े हुए नहीं है। "बनोव्य" लाते समय तथा रात्रि को आंगन मे तो ये गाये ही जाते हैं पर शेष समय में भी इनके गाने पर कोई बन्धन नहीं है। बनड़े वर या कन्या के यहां समान रूप से गाये जाते हैं। इनका विषय-क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इनमें जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। इन गीतों में एक ओर वर-कन्या के प्रेम एवं सौन्दर्य का वर्णन हुआ है तो दूसरी ओर सास-बहू तथा ननद-भाभी के द्वेष का चित्रण भी हुआ है। खान-पान, रहन-सहन, आभूषण तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं का इन गीतों में विस्तृत वर्णन हुआ है।

विश्नोई सम्प्रदाय में गाये जाने वाले अधिकांश "बनड़े" वर्णनात्मक हैं पर कुछ संवादात्मक भी है। संवादात्मक गीत अन्य गीतों की तुलना में अधिक रोचक है। एक गीत में बनड़ी की ओर से बनड़े के देर से आने पर चिन्ता व्यक्त की जा रही है और बनड़े की ओर से सन्तोषप्रद जवाब दिया जाता है।

हां ओ बनां रात गई अधरात गई
मोड़ा क्यूं पधार्‌या जी म्हारा राज
मोड़ा क्यूं पधारया जी म्हारा राज
हां ए बनी गयो हो खुरसाणी री हाट,
घोड़लो रो म्हानें चाव जी म्हारा राज। घोड़ला रो ....[29]

वनड़ा देर से आने के लिए विवाह के भिन्न-भिन्न कामों का बहाना करता है और बनड़ी सलाहा देती है कि उसे किसी भी काम को करने की आवश्यकता नहीं है। विवाह के सभी काम परिवार के अन्य सदस्य कर लेंगे। एक अन्य गीत में "बनड़ी" बनड़े से "धणकपुरी" लाने की प्रार्थना करती है और बनड़ा कहीं अपनी अज्ञानता, कहीं कोई शर्त और कहीं किसी बहाने का सहारा ले लेता है।

बना जयपुर ज्याज्यो जी, आन्ता ल्याज्यो जी धणकपुरी।
बनी मैं नहीं जाणु जी, किसोई रंग धणकपुरी।
बना हरया-हरया पता जी, बिदामी रंग धणकपुरी।[30]

इस गीत में एक ओर पति-पत्नी के प्रेम का चित्रण हुआ है, तो दूसरी ओर सास-बहू के "मन-मुटाव" का भी वर्णन है। इन दोनों रूपों में जीवन की सच्चाई अभिव्यक्त हुई है।

बना किस विध ओढ़ू जी, घर में थारी माउजी बुरी।[31]

इस तरह प्रश्नोत्तर प्रणाली से लोकगीत अत्यन्त रोचक एवं मार्मिक बन गये हैं। "लोकगीतों में प्रश्नोत्तर की परम्परा का सूत्र सम्भवतः वैदिक सूत्रों और आख्यानों से आया है।"[32]

एक अन्य बनड़े गीत में बनड़ी अपनी मां से अच्छे बनड़े की प्रार्थना करती है।

काळै बनै नै मत ब्याहिये मेरी मां, डर लागै अंधेरे में
तू स्याम सख्ल नै ब्याहिये मेरी मां, फोटू राखै झोळै में।[33]

कहीं बनड़ी अपनी पसंद भी बनड़े के सामने रखती है तो कहीं बनड़े से मिलने की उत्सुकता में वह बनड़े की सभी मांगे पूरी करने को तैयार है। कहीं बनड़ा स्वयं बनड़ी के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करता है तो कहीं बनड़ी की फरमाइश पर "*थौड़े में काम चला लेणा*" की भी *सलाह देता है। इस तरह बनड़े गीतों में* जीवन के विविध पक्ष चित्रित हुए हैं।

बिश्नोई सम्प्रदाय के अधिकांश गीत ग्रामीण परिवेश के ही है। पर कुछ बनड़े आधुनिक समय से भी संबंधित है। आधुनिक समय में शहरों का प्रभाव गाँवों तक पहुंच गया है। इसी कारण शहरी वस्तुएँ भी ग्रामीण जीवन में प्रवेश कर चुकी है। इन वस्तुओं का वर्णन भी आधुनिक बनड़े गीतों में हुआ है।

5. भात के गीत

भाई द्वारा अपनी बहिन के पुत्र या पुत्री के विवाह के समय अपने परिवार वालों को साथ लेकर जो वस्त्र, आभूषण एवं रुपये आदि दिये जाते हैं, उसे "भात भरना" कहते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में भात विवाह से एक दिन पूर्व या विवाह के दिन भरा जाता है। भात भरने के समय किसी कारणवश यदि पीहर पक्ष की ओर से कोई न आये तो बनड़े की मां की स्थिति बहुत ही शोचनीय हो जाती है। उसे विवाह का सारा उल्लास ही फीका लगने लगता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में बहिन के यहां जो पहला विवाह होता है, अधिकतर उसी समय भात भरा जाता है। भात एक ही बार भरा जाता है। इसे सम्प्रदाय में बहुत ही पुण्य का कार्य माना जाता है। भात भरने की यह प्रथा केवल बिश्नोई समाज में ही नहीं है अपितु अन्य जातियों में भी प्रचलित है। यह प्रथा भाई-बहिन के अटूट प्रेम का प्रतीक है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में यह प्रथा अपना विशेष महत्त्व रखती है। इससे संबंधित अनेक लोकगीत प्रचलित है। इन गीतों में कहीं भाई के समय पर न पहुंचने पर बहिन की चिन्ता एवं व्यथा का चित्रण है और कहीं भाई के पहुंचने पर बहिन की प्रसन्नता का वर्णन है। सम्प्रदाय में विवाह के लिए किसी भी प्रकार के

मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। पर अपनी आर्थिक स्थिति का तो अनुमान करना ही पड़ता है। सम्प्रदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि है। अच्छी फसल होने पर विवाह करना सरल हो जाता है। इसीलिए भात के एक गीत के प्रारम्भ में कृषि कार्य का वर्णन किया गया है,जिसमें वर्षा होने से लेकर फसल के तैयार होने एवं घर तक लाने का वर्णन है। इससे आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता का पता चलता है। इस तरह गीत में गृहस्थ जीवन की सम्पन्नता का चित्रण करके पत्नी, पति को कर्त्तव्य का बोध कराकर अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई दिखाई देती है।

धण पीडै ओ बीरा सायब पलंग जै ओ
थां घर सुत्या सायब ना सरै जै ओ।
थां घर कंवारी सायब धीवड़ी जै ओ।[34]

विवाह में अन्य मेहमानों की अपेक्षा "भातवी" विशिष्ट मेहमान होते हैं। अन्य मेहमानों को नाई द्वारा "पीळे चावळ" देकर निमंत्रण दिया जाता है जब कि भाई को भात भरने के लिए निमन्त्रण देने स्वयं बहिन जाती है।

थारा नै निंवतो सायब पीळै चावळ जै ओ
मेरा नै निंवतुं गुड़ भेलियो जै ओ
थारा नै निंवतो सायब नाई गै हाथ जै ओ
मेरा नै निंवतण दोन्यु चालस्या जै ओ।[35]

भाई के प्रेम में डूबी हुई बहिन बडे ही चाव से अपने भाई को "निवतंण" जाती है। बहिन को पूरा विश्वास है कि उसका भाई अपने परिवार जनों के साथ उसे "भात भरने" आयेगा पर किसी कारण से जब भाई को देर हो जाती है तो बहिन को सास-ननद से ताने सुनने को मिलते हैं।

बोली-बोली ओ बीरा सासु-नणद बोल जै ओ[36]

तानों से दु:खी होकर बहिन पानी लाने के बहाने अपने भाई-भतीजों को देखने के लिए सरोवर की पाळ पर पहुंचती है। प्रतीक्षा का एक-एक पल बहिन के लिए कई युगों के समान हो जाता है। प्रतीक्षातुर बहिन का इस लोकगीत में बहुत ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

एकर चढ़ू एकर बीरा उतरुं जै ओ
चढ़ती-उतरती गा बीरा घसग्या ए पैरवा जै ओ[37]

ऐसी स्थिति में उसे ज्यों ही अपने पीहर के रास्ते में "झीणी-झीणी खेव" दिखाई देती है, उससे उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती। वह घर आकर अपने भाई-भतीजों के स्वागत की तैयारी करती है और ताने देने वालों को

चुप कराती है।

चालो-चालो देवर, बीरा आया भातवी जै ओ।[38]

इसके बाद गीत में "भात भरने" का वर्णन है। इस तरह से इस एक ही गीत (पीळो) में ऋतु वर्णन से लेकर, कृषि कर्म, माता-पिता द्वारा कन्या के विवाह की चिन्ता, बहिन द्वारा भाई को भात भरने के लिए निमन्त्रण देना, भाई के देर से आने पर होने वाली चिन्ता, आने पर बहिन की प्रसन्ता तथा भात भरने आदि सभी का वर्णन पूर्ण विस्तार से किया गया है। लोक गीतों में जीवन के समग्र चित्र को देखा जा सकता है। बिश्नोई सम्प्रदाय का यह लोकगीत भी जीवन की समग्रता से युक्त है।

बहिन भाई को बहुत चाहती है। इसीलिए वह उसकी प्रशंसा करती रहती है और वह यह भी चाहती है कि ससुराल में अन्य लोग भी उसके भाई की प्रशंसा करें। इसीलिए वह अपने भाई से अच्छा भात भरने के लिए कहती है। अच्छा भात भरने के लिए भाई को क्या-क्या लाना है, यह भी बहिन बता देती हैं। अपने तथा अपने बच्चों के साथ-साथ वह ससुराल वालों के लिए भी कुछ न कुछ लाने को कहती है।

हां रे बीरा सासु नै तीवळ ल्याई रे, मेरे सुसरै नै कामळ।
जेठा ने चादर ल्याई रे, जेठाणियां नै पीळै गो भेस
देवर नै लंगोटी ल्याई रे, नणदा नै दिखणी चीर।[39]

इससे एक ओर पत्नी का अपने परिवार के प्रति प्रेम अभिव्यक्त हुआ है तो दूसरी ओर भात भरने के इस गीत से सामाजिकता भी प्रकट हुई है। भाई भी बहिन की मनोभावना जानता है। वह भी बहिन के स्नेह में बन्धा होने के कारण हर स्थिति में भात लेकर जाना चाहता है, चाहे उसे अपना "घोड़ा बेचना" पड़े और चाहे "पत्नी का हार"।

बीरै चढ़ण गो घोड़ो बेच्यो, भावज गो बेच्यो नवसर हार।[40]

वैसे तो बहिन को अपने पीहर से वस्त्र आदि मिलते ही रहते हैं पर भात का विशेष महत्त्व होने के कारण, भाई द्वारा लायी हुई "चूंदड़ी" को बहिन विशेष महत्त्व देती है।

आया-आया मां गा जाया बीर, हीरा जड़ लाया चूंदड़ी
ओढ़ू तो ए बीरा हीरा झड़ पड़ै
बुगचै में मेलु तो तरसै जीव, सादी क्यूं नी लाया चूंदड़ी।[41]

प्रेम की कैसी विवशता है। एक ओर-बहिन चाहती है कि भाई ऐसी चूंदड़ी लाए, जिससे सभी लोग उसके भाई की प्रशंसा करे, दूसरी ओर जब

भाई "हीरे जड़" चूंदड़ी लाता है, तो चूंदड़ी के खराब होने का डर है। पर इसे छुपाकर अन्दर भी नहीं रखा जा सकता।

बहिन के घर जिस दिन भाई भात लेकर आता है, वह दिन बहिन के लिए सबसे भाग्यशाली दिन होता है। ऐसे समय में बहिन भाई के सुख की कामना करती है और "सुख गी घड़ी" नामक गीत गाया जाता है।

बहन गो दिल राजी ओ
रामी बाई रा बीरा थानै, सुख गी ओ घड़ी।[42]

इस तरह विश्नाई सम्प्रदाय के भात से सम्बन्धित गीत जीवन की समग्रता, भाई-बहिन के अटूट प्रेम, पारिवारिक प्रेम, पत्नी का उत्तर दायित्व, बहिन द्वारा अपने पीहर की मान-मर्यादा की चिंता आदि बातों से ओत-प्रोत है।

6. रातीजगे के गीत

बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह से पूर्व रात्रि को बनड़े-बनड़ी के हाथों एवं पैरों में मेहंदी लगायी जाती है और स्त्रियों द्वारा सारी रात गीत गाये जाते हैं, इसी को "रातीजगा" (रात्रि जागरण) कहते हैं। विवाह सफलता पूर्वक सम्पन्न हो जाये, इसी उद्देश्य से रातीजगे के गीतों द्वारा विभिन्न देवी-देवताओं को स्मरण किया जाता है। रातीजगे के गीत अन्य गीतों की तुलना में कुछ बड़े भी है और एक विशेष लय में गाये जाते हैं। इसीलिए इन गीतों को याद रखना एवं गाना सभी स्त्रियों के लिए सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि बिश्नोई सम्प्रदाय में रातीजगे के गीतों को गाने वाली स्त्रियों का समाज में विशेष महत्त्व रहता है। बिश्नोई सम्प्रदाय के रातीजगे में गाये जानेवाले विभिन्न प्रकार के गीतों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है :-

(क) अवसर से संबंधित गीत।
(ख) देवी-देवताओं से संबंधित गीत।
(ग) कथात्मक गीत।
(घ) समय से संबंधित गीत।

रातीजगे के गीत इसी क्रम में गाये जाते हैं। सर्वप्रथम "दिवलो" नामक गीत गाया जाता है। बनड़े-बनड़ी के मेहंदी लगाने का काम ही इस रात्रि में मुख्य होता है। मेहंदी भी कोई साधारण दिनों की तरह नहीं लगानी होती है अपितु "सासरिय" पहुंचाने वाली लगानी होती है। ऐसी मेहंदी लगाने से पूर्व दिवलो जलाया जाता है और "जग म्हारा सोवन दिवला महला मे" गाया जाता है। इससे अंधकार भी दूर हो जाता है और साथ ही अग्नि देव को भी स्मरण कर लिया जाता है।

दिवले के प्रकाश में बनड़े-बनड़ी के मेहंदी लगायी जाती है और मेहंदी नामक गीत गाया जाता है। इस गीत में मेहंदी के कूटने से लेकर उसके रचने तक का वर्णन है। बिश्नोई सम्प्रदाय में रात्रि को बनड़े-बनड़ी के दो बार मेहंदी लगायी जाती है। मेंहदी लगाने का काम अधिकतर बहिन ही करती है। इसीलिए इस गीत में बहिन को मेहंदी लगाने के बदले दिये जाने वाले "नेग" का भी वर्णन है।

आ तो रच्या-रच्या सुगना बाई हाथ, परेम रस मेहंदी रचणी
आ तो सुगना बाई नै लेवटो घड़ाय, परेम रस मेहंदी रचणी।[43]

"दिवलो"एवं "मेहंदी" नामक गीत अवसर से संबंधित है।

मेहन्दी के बाद देवी-देवताओं से संबंधित गीत गाये जाते हैं। एक ही गीत में कई देवताओं को याद किया गया है पर सर्वप्रथम सम्प्रदाय के प्रवर्तक जाम्भोजी को ही याद किया है। इससे गीत का वैशिष्ट्य प्रामाणित होता है।

जाम्भोजी जोगा घोड़ला सुरमानी, हडुमान जी जोगी छड़ी रे गुलाब री[43]

एक अन्य गीत में भी जाम्भोजी एवं हनुमान जी से "जागो नी" की प्रार्थना की गई है।

देवी-देवताओं के बाद लोक जीवन में रही आदर्श सती एवं आदर्श पति के गुणों को गीतों द्वारा स्मरण किया जाता है। पति-पत्नी के इन आदर्श गुणों के द्वारा बनड़े-बनड़ी से भी यह आशा की जाती है कि वे भी अपने दाम्पत्य जीवन में इन्हीं आदर्श गुणों को अपनाने का प्रयास करें, जिससे उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय बन सके। रातीजगे की अगली रात्रि में ही बनड़ा-बनड़ी दाम्पत्य सूत्र में बंध जाते हैं। उनका वैवाहिक जीवन सफल रहे, इसी उद्देश्य से आदर्श पति एवं आदर्श पत्नी के गुणों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया जाता है। ऐसे सभी गीत कथात्मक है। आदर्श पति-पत्नी के नाम के आधार पर ही इन गीतों का नामकरण हुआ है। जेतल, भटियारण, काछ्यो आदि गीत इसी प्रकार के हैं। इनमें से बिश्नोई सम्प्रदाय में "जेतल" सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसीलिए समाज में इससे संबंधित एक कहावत भी प्रचलित है।

जेतल बिना किसो रातीजगो
गुड़ बिना किसी सगाई।[44]

रातिजगे में कथात्मक गीत कितने गाने हैं, यह स्त्रियों की इच्छा पर निर्भर रहता है पर "जेतल" नामक गीत अनिवार्य रूप से गाया जाता है। कथात्मक गीतों को एक निश्चित क्रम में गाया जाता है। एक गीत आदर्श पति का एवं दूसरा आदर्श पत्नी

का गाया जाता है। इससे एक और बिश्नोई समाज में स्त्री-पुरुष की समानता प्रकट होती है तो दूसरी ओ समाज में मानवीय गुणों के प्रति विशेष रूझान की प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है।

समय से संबंधित गीत प्रातःकाल में गाये जाते हैं। भोर में "कूकड़ो" नामक गीत गाया जाता है। इस गीत के साथ स्त्रियां मटकी बजाती हैं और कुछ मटकी में मुंह डालकर कूकड़े की आवाज भी निकालती है। यह गीत लगभग मुर्गे के बांग देने के समय ही गाया जाता है। गीत संवादात्मक है, जिसमें घर की बहू एवं "कूकड़ले" (मुर्गे) का संवाद है। बहू उससे "चूण चूगण नै आ जा रे" तथा "चतराई सूं बोली कूकड़ा रे" की प्रार्थना करती है। कूकड़ा अपने आने की कठिनाई बताता है और बहू उसे दूर करने का आश्वासन देती है।

थारोड़ो देवर ए बाई अचपळो।
चुगतै गी पकड़े चांच, उड़तै गी पकड़े पांख। कूकड़ा बोल कु कु ..
चतराई सूं बोली कूकड़ा रे
सगा-संबंधी सुणैला, जवाई-भाई सुणैला। कूकड़ा बोल कु कु ...
देवर नै मेलू चाकरी कुकड़ा, रे म्हारै चूण चुगण ने आ जा रे।[45]

इस गीत में एक ओर बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन किया है तो दूसरी ओर "म्हारे चूण चुगण ने आ जा रे" के माध्यम से बिश्नोई सम्प्रदाय की "जीव दया पालणी" की भावना भी अभिव्यक्त हुई है।

कुकड़े के बोलते-बोलते चारों ओर प्रकाश फैलने लगता है और घर में आये हुए मेहमान भी जाग जाते हैं तथा दांतुन करने की तैयारी करने लगते हैं। इसी समय "दांतुण" नामक गीत गाया जाता है। यह गीत भी संवादात्मक है, जिसमें राधा-यशोदा, यशोदा-कृष्ण तथा कृष्ण-राधा के संवाद है। गीत में सास-बहू की कलह, पति की द्विविधाग्रस्त स्थिति और मां तथा पत्नी को यथायोग्य सम्मान देकर कलह को समाप्त करके सुखी गृहस्थ जीवन का वर्णन किया गया है। गीत द्वारा बनड़े को सफल गृहस्थ जीवन के लिए कृष्ण जैसी भूमिका निभाने का स्पष्ट संकेत किया गया है। समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत गीत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

7. बारात प्रस्थान के गीत

जिस दिन बारात प्रस्थान करती है, उस दिन भी सदैव की तरह बनड़े के पीठी लगाई जाती है पर पीठी लगाने से पूर्व सम्बन्धी दम्पत्तियों द्वारा दही भी लगाया जाता है, जिसे "झोळ" कहते हैं। बनड़े के संबंधी एवं अन्य निकट के

लोग जोड़े में (पति-पत्नी) बनड़े के सिर पर दही मलते हैं और स्त्रियां उनका नाम लेकर गीत गाती हैं। इसमें पति बनड़े या बनड़ी के सिर पर दही लगाता है एवं पत्नी उस दही को मसलती है। दही लगाने वाले सभी संबंधी पास में खड़े नाई को भी "नेग" के रूप में कुछ पैसे देते हैं।

कोरी मोरी कुलड़ी में धई रे जमायो।
थे जुग जीयो लाडलै रा दादा जी, थेई झोळ जे घलियो।
सरब सुहागण लाडलै री दादी जी, थेई मसळ नहवायो।[46]

इसके बाद सदैव की तरह ही पीठी लगायी जाती है और गीत गाये जाते हैं। स्नान करने के बाद बनड़ा नये वस्त्र पहनकर "दूल्हा" बन जाता है और लोग उसे "बीन राजा" कहना प्रारम्भ कर देते हैं। एक ओर बनड़ा वस्त्र पहनता है तो दूसरी ओर स्त्रियां "बागा" गाने लगती है। वह जो-जो वस्त्र पहनता है, उसका नाम ले-लेकर स्त्रियां गीत गाती रहती हैं।

अब म्हारो लाडलो बागो जी पैरे, मेह-मेह दरजी होयस्या ओ राज।
दरजी होयस्या सागै जायस्या, नानड़िय री जतन करास्या ओ राज।[47]

बिश्नोई सम्प्रदाय में दूल्हा सेहरा न बांधकर पगड़ी बांधता है। यह पगड़ी गायणाचार्य द्वारा बांधी जाती है।

अब म्हारो लाडलो पेचो जी बांधै, मेह-मेह गायण होयस्या ओ राज।
गायण होयस्या मेह सागै जायस्या, कम धजिय रा जतन
करायस्या ओ राज।[48]

इस तरह बागे से लेकर जूती तक पहन कर बनड़ा "दूल्हा" बन आता है। दूल्हे के तैयार होने तक बाराती भी अपने-अपने घरों से तैयार होकर आने लगते हैं। ज्यों-ज्यों बाराती आते रहते हैं, त्यों-त्यों स्त्रियां उनका नाम ले-लेकर गीत गाती हैं।

राय बनै केसरिय री जान कुणा जी पधारिया।
रामू जी रा सिव राजू जी जान पधारिया।[49]

एक अन्य गीत में दूल्हे के संबंधियों से बारात में जाने को कहा जा रहा है।

घोड़ी करै सै आमा-झामा, जान चढ़ो केसरिय रा मामा।
घोड़ी गळ गुगर माळा।।
घोड़ी करै सै इरा जी जीरा, जान-चढ़ो सोजतियै रा बीरा।
घोडी गळ गुगर माळा।।[50]

बारात प्रस्थान के समय सभी लोग अत्यधिक आनंदित दिखाई

देते हैं। कुछ लोगों को घर में वहू आने की प्रसन्नता होती है, कुछ को मिठाई खाने की एवं नये वस्त्र पहनने की प्रसन्नता होती है। वारतियों को वारात में जाने की प्रसन्नता होती है। विश्नोई सम्प्रदाय में इसी प्रसन्नता को स्त्रियां गीतों द्वारा और बढ़ा देती हैं और साथ ही इन गीतों से विश्नोई समाज की विवाह से सम्बन्धित विभिन्न रस्में अभिव्यक्त हुई है। लोकगीतों का लोक जीवन से अटूट सम्बन्ध रहता है। इसी कारण लोकगीतों की संवेदन शीलता सदैव श्रोता को आनंद विभोर करती रहती है। ये सब विशेषताएँ बारात प्रस्थान के इन गीतों में प्रकट हुई हैं। बारात में जाने का जितना उत्साह बारातियों को होता है वह इन गीतों को सुनकर और अधिक बढ़ जाता है। समाज की विभिन्न रस्में भी इन लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई है।

८. तोरण के गीत

बारात के गांव में प्रवेश करने से पूर्व ही बारात का नाई खेजड़ी की टहनी लेकर बारात पहुंचने का शुभ समाचार लेकर कन्या पक्ष के घर बधाई लेने पहुंच जाता है। इस समाचार से कन्या के घर में नया उल्लास छा जाता है और विवाह के कार्यों में तेजी आ जाती हैं। नाई को "घी-खांड" खिलाकर तथा उसकी पीठ पर पीठी की थाप लगाकर स्वागत किया जाता है। यह थाप कन्या पक्ष के लोगों के हृदय की प्रसन्नता का प्रतीक होती है। कन्या पक्ष के कुछ लोग बारात की अगवानी करने पहुंचते हैं, जिन्हें "पड़जानी" कहते हैं। ये बारात के डेरे पहुंचने तक बारात के साथ रहते हैं। सन्ध्या को दूल्हा बरात को साथ लेकर गाजे-बाजे सहित कन्या के द्वार पर पहुंचता है, जिसे "ढुकाव" कहते हैं। इस समय दूल्हे के बहनोई के पास बोरटी (*Zizyphus*) की एक डाली होती है, जिसे वह रास्ते में से तोड़कर लाता है। ढुकाव के समय दूल्हा इस डाली को अपने माथे से स्पर्श करके द्वार पर बंधी हुई खेजड़ी की टहनियों से बनी बन्दनवार के ऊपर से कन्या पक्ष के किसी व्यक्ति को पकड़ा देता है, इसी को "तोरण बानणा" कहते हैं। नाई द्वारा बधाई के लिए खेजड़ी की टहनी लेकर आना, खेजड़ी की टहनियों की बंदनवार बनाना तथा बोरटी की डाली से "तोरण बानणा" आदि कार्यों से बिश्नोई सम्प्रदाय की वृक्ष-प्रेम की भावना एवं खेजड़ी वृक्षों की रक्षा की परम्परा का निर्वाह होता हुआ दिखाई देता है।

"तोरण बानणे" के बाद कन्या की मां दूल्हे को दही का तिलक करती है, जिसे "दही देणा" कहते हैं। इसी समय सास द्वारा दुल्हे की आरती की जाती है। इस तरह एक ओर "ढुकाव" की सारी रस्में पूरी होती रहती है तो दूसरी ओर स्त्रियां भी इन रस्मों के साथ गीत गाती रहती है। ढुकाव के समय सर्वप्रथम "तोरण" गाया जाता है।

तोरण आयो रायभर, नित-नित सवायो राज।[51]

इसके साथ ही कामणा गीत गाया जाता है। कामणा का अर्थ है- जादू-टोना। दूल्हे पर कामणा गीत द्वारा प्रेम का जादू किया जाता है।

पूछो सरदार बनी नै कामण ढीला छोड़ो राज।
म्हें ना कामण गारा, म्हारो जोसी कामण गारो राज।[52]

ऐसे गीतों के माध्यम से पति को पत्नी-प्रेम के वशीभूत करने का प्रयास किया जाता है। इन गीतों में वर एवं कन्या का भी वर्णन किया जाता है। एक ओर योग्य वर प्राप्त होने पर कन्या के भाग्य की प्रशंसा की जाती है तो दूसरी ओर वर के माता-पिता को भी योग्य पुत्र के लिए धन्यवाद दिया जाता है।

धन-धन थारै मात-पिता नै, ऐसो कंवर जलम्यों राज।
धन - धन थारी दादी नै, सोनै रो थाळ बजायो ओ राज।।[53]

आरती करने के समय स्त्रियां "जवाई को निरखने" का गीत गाना प्रारम्भ कर देती है।

सासु निरखै जवाई ए, दयली ओळवो।[54]

सास जवाई को "निरख" कर कोई उलाहना नहीं देती, क्योंकि जवाई तो उसके "सायब" द्वारा पसंद किया हुआ है।

म्हारै सायब रो ल्याट्यो, ना दयूं ओळवो।।[55]

ढुकाव के समय दूल्हे के साथ पूरी बारात होती है। दूल्हे के सम्मान में इतने गीत गाने के बाद स्त्रियां बरातियों के स्वागत स्वरूप गालियां गाती है। इन गालियों से कुछ हास्य विनोद भी हो जाता है।

सात सोपारी लाडा सिंगोड़ा रो सटको।
बाबै बारो आयो लाडला, कांगो करसी गटको।।
सात सोपारी लाडा सिंगोड़ा रो सटको।
काणा-काणा जानी लायो लाडा, कांगो करसी मटको।।[56]

इस तरह "सिंगोड़ा रो सटको" लेते हुए बारात ढुकाव के बाद गाजे-बाजे के साथ अपने डेरे पहुंच जाती है।

9. विदाई के गीत

विवाह की सभी रस्में बडे ही आनंद के साथ सम्पन्न होती है पर कन्या की विदाई बड़े ही कारूणिक वातावरण में होती है। आनन्द एवं हास-परिहास का वातावरण देखते ही देखते करूणा के पर्दे से ढ़क जाता है। लाड-प्यार में पली-पोषी कन्या नये वस्त्र एवं आभूषण धारण कर जब अपने माता-पिता,

भाई-वहिन, सहेलियों एवं घर के अन्य प्राणियों को छोड़कर ससुराल के लिए घर की देहली से वाहर पहला कदम रखती है, तो उसकी आंखों से अविरल आंसू वहने लगते हैं। हृदय विछोह के दु:ख से भर जाता है और रूलाई फूट पड़ती है। कन्या की इस रूलाई को सुनकर उसे विदा करने के लिए आयी हुई स्त्रियां भी सिसक उठती है और सिसकते हुए गाने लगती हैं।

एक लड़ी सिद्ध चाली
हूं थानें पूछूं रामी वाई, इतरो माता जी रो लाड,
एक्लड़ी सिद्ध चाली।[57]

क्या ही विधि का विधान है कि जो कन्या कल तक घर में सभी के स्नेह का केन्द्र वनी हुई थी, आज उसका साथ देने वाला कोई नहीं है। वह घर से अकेली ही प्रस्थान करती है। वेटी के रोने एवं स्त्रियों के कारूणिक स्वर को सुनकर सारा वातावरण ही अश्रुमय वन जाता है। कन्या अपने माता-पिता, चाचा-ताऊ एवं मामा आदि सभी की लाडली होती है। ससुराल जाते समय कन्या आंसू वहाते हुए सवके गले मिलती हैं। उसी समय स्त्रियां गीत के माध्यम से यह पूछती है कि वह अपने वावा, चाचा एवं मामा की इतनी लाडली होने पर भी अकेली कहां जा रही है?

एक्लड़ी सिद्ध चाली
हूं थानें पूछूं रामी वाई, इतरो मामा जी रो कोड,
एक्लड़ी सिद्ध चाली।[58]

भरे गले से जब स्त्रियां गीत की इन पंक्तियों को गाती हैं तो सुनने वालों का भी हृदय टूक-टूक हो जाता है। पर स्त्रियां भी विवश होती हैं। वे भी दु:खी मन से समय की परम्परा का निर्वाह करती हैं। कन्या की विदाई के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले इन कारूणिक गीतों से घर का सारा वातावरण कारूणिक हो जाता है।

कन्या की विदाई के "इन गीतों में करुणा, विवशता और स्नेह की मार्मिक स्थिति वरसाती नदी के समान आंखों से झर-झर कपोलों पर वह पड़ती है।[59] *विदाई के समय केवल कन्या को ही दु:खी नहीं होना पड़ता, उससे भी कहीं* अधिक दु:ख अपने रक्त के अंश को दूर करने से माता-पिता को होता है। अपने वचपन की सहेली का साथ छूटने से सखियां भी रो उठती है और दूसरों को भी रूला देती हैं।

जन्म से लेकर विदाई से पूर्व तक कन्या अपने माँ-वाप के घर को ही अपना घर समझती है। घर के सभी पशु-पक्षियों एवं वस्तुओं को अपना

मानती है। पितृ-गृह के प्रत्येक प्राणी एवं वस्तुओं के साथ उसका बचपन से संबंध रहता है। विदाई के समय जब वह अपने माता-पिता एवं भाई-बहिन को छोड़ती है तो घर के अन्य प्राणियों एवं वस्तुओं से भी उसका संबंध टूट जाता है। जीवन के इतने वर्षों तक, वह जिस आंगन में खेली और जिन वस्तुओं के सानिध्य में रही, उन्हें वह एक-एक करके जब अपनी मां को सम्हलाती है, तो हृदय करूणा से भर उठता है।

आलय ए माता थारो आंगणो, ए भोळी चेरमी ले।
खेल लिया दिन चार, राय राती चेरमी ले।
आलय ए माता थारो बाटको, ए भोली चेरमी ले।
जीम लिया दिन चार, राय राती चेरमी ले।[60]

विदा होती हुई बेटी को पिता की ओर से अनेक वस्तुएं दी जाती हैं, पर घर की पुरानी वस्तुओं के साथ जो एक लम्बा संबंध रहता है, जो एक आत्मीयता रहती है, वह इन नयी वस्तुओं के प्रति उस समय नहीं बन पाती। इसी कारण नयी वस्तुओं की प्राप्ति पुरानी वस्तुओं के विछोह से उत्पन्न दु:ख को मिटा नहीं पाती।

बिश्नोई समाज में जब कन्या पहली बार ससुराल जाती है, तो वह अपने आपको अकेली अनुभव न करें, इसलिए उसके भाई-भतीजे, चाचा, मामा आदि साथ जाते हैं। बाकी संबंधी उसे घर से ही विदा कर देते हैं।

बाबै गो बाई रो डोयड्या तांई गो साथ मोरला। मोरियो ए मां।
माता बाई री आंगणो बुळाय मोरला। मोरियो ए मां।
बीरो बाई रो धोरे-धोरे साथ मोरला।[61]

सहेलियां "फळसे" से आगे बढ़ती हुई अपनी सखी का साथ देती है पर थोड़ी ही दूरी पर उनका साथ भी छूट जाता है और "जवाई के साथ" एक चिरस्थायी साथ बन जाता है।

घटियो-घटियो सहेल्या रो साथ, राय राती चेरमी ले।
एकज चिरमी बंध गई, ए भोळी चेरमी ले।
बंधियों-बंधियों जवाई जी रो साथ, राय राती चेरमी ले। [62]

दु:खी मन एवं भीगी पलकों से सहेलियां अपनी सहेली को विदा कर देती हैं और बादलों से प्रार्थना करने लगती हैं।

मेवड़ला धीमो-धीमो बरस, चढ़ती बाई री भीजै बोरंग चूंदड़ी जी।
बिजलती धीमी-धीमी चमक, चढ़तै जवाई रो चमकै तेज घोडलो।[63]

स्नेह, विवशता और करूणा युक्त वातावरण में अपने सभी प्रियजनों के गले लगकर आंसू बहाती बेटी "करवे" पर सवार होकर विदा हो जाती है। आंसू रुकने के बाद जब वह इधर-उधर देखती है, तब तक घर और गांव बहुत पीछे छूट जाते हैं। वह मुड़ कर पीछे देखती है तो उसे गांव के "रूंख" दिखाई देते हैं और आगे उसे अपने प्रियतम का सुख, ससुराल का चाव एवं जीवन की सार्थकता दिखई देती है। ऐसी स्थिति में उसका मन अपने प्रियजनों से मिलने के लिए आतुर हो उठता है और वह अपने "साहेब" से प्रार्थना करती है।

सुभ रा साहेबा करवो पाछो घेरो, ओळूड़ी तो आवै म्हारै पीवर री।
गेली ए मरवण असल गंवार, पीवरिय रा भोळा सासरियो भान सी
ए धण चूड़ला री।[64]

हे प्रियतम एक बार अपने ऊंट को लौटा लो। हे साहेबा मुझे मेरे पीहर की बहुत याद आ रही है। ऐसे समय में पति के लिए न तो "करवा" ही वापिस करना सम्भव होता है और न वह अपनी प्रियसी के आंसू ही सहन कर सकता है। वह अपनो पत्नी को प्यार भरा आश्वासन देता है कि "ऐ धण चूड़ला री" पीहर का अभाव ससुराल द्वारा पूरा हो जायेगा। इस तरह इस गीत में एक ओर विदा होती हुई कन्या के अपने घर एवं प्रियजनों के प्रति उमड़ते स्नेह को व्यक्त किया है तो दूसरी ओर नववधू को अपने नव जीवन के कर्त्तव्यों की भी याद दिला दी गई है। नव-वधू से आशा की जाती है कि वह नये परिवार में ही अपने पीहर का समाहार कर ले। इसी में दोनों परिवारों का हित है।

इस तरह अन्य जातियों की तरह ही बिश्नोई सम्प्रदाय में बेटी की विदाई के गीत प्रेम एवं करूणा से ओत-प्रोत हैं। ये सभी गीत इतने मार्मिक हैं कि श्रोता के हृदय को स्पर्श करके उसे भी विदा होती हुई बेटी की तरह आंसू बहाने पर विवश कर देते हैं। विदाई के इन समस्त गीतों में प्रसन्नता एवं विछोह के दु:ख का मिश्रण रहा है। इन गीतों के द्वारा जो करूण रस टपका है उसके सामने शिष्ट साहित्य का करूण रस भी फीका दिखाई देता है। ये लोकगीत लोक जीवन की आत्मा से जुड़े हुए हैं, इसी कारण ये इतने मार्मिक हैं।

10. मुकलावे के गीत

विवाह के बाद जब बहू पहली बार ससुराल आती है तो वह "मुकलावा" कहलाता है। बाल-विवाह के कारण विवाह के कई वर्षों बाद भी "मुकलावा" होता रहा है, लेकिन आज शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण बाल-विवाह प्राय: बन्द ही हैं। इसी लिए आज कल विवाह के साथ ही "मुकलावा" हो जाता है।

जब दुल्हन पहली बार ससुराल पहुंचती है, तो उसका भव्य स्वागत होता है। बहू आने की सबसे अधिक प्रसन्ता सास को ही होती है। इसलिए बहू का स्वागत करने में सास की ही भूमिका प्रमुख रहती है। अपने आंगन में अपने बेटे की चांद सी सुन्दर बहू देखने की खुशी में ही सास विवाह के सभी कार्यों को बड़ी रूचि एवं प्रसन्नता के साथ करती है। बहू के आगमन की सूचना देकर लोग सास से ही बधाई प्राप्त करते हैं।

बेटा जब बहू को लेकर घर पहुंचता है तो बिश्नोई सम्प्रदाय में स्त्रियों द्वारा अनेक गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में कुछ गीत तो "मुकलावे" के ही होते हैं पर कुछ "बनड़े" भी गाये जाते हैं। यहां केवल मुकलावे से संबंधित गीतों का ही विवेचन किया जा रहा है।

वंश वृद्धि के लिए विवाह करवाना आवश्यक है। इसी कारण विवाह को बहुत ही शुभ एवं धार्मिक कार्य माना जाता है। यह कार्य जब बिना किसी बाधा के सम्पन्न हो जाता है तो बनड़े से यह आशा की जाती है कि वह अपने बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करें। इससे पूर्व बनड़े से अपनी "कांकड़"[65] और "खेड़े"[66] से प्रणाम करने को कहा जाता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में पहले दुल्हा-दुल्हन द्वारा "कांकड़" पूजा की प्रथा रही है, पर अब तो केवल गीत ही शेष रह गया है।

जे तूं आयो रे लाडला जीत कै, थारी कांकड़ सूं करी रे सलाम,
बनी लायो ब्यागै।
जे तूं आयो रे लाडला जीत कै, थारै खेड़ै सूं करी रे सलाम,
बनी लायो ब्यागै।[67]

बहू जब पहली बार ससुराल पहुंचती है तो नयी जगह और नये लोगों के बारे में उसके मन में अनेक जिज्ञासाएं एवं शंकाएं होना स्वाभाविक है। ससुराल के सभी प्रकार के कष्टों को बहू अपने पति के सहयोग एवं प्रेम से सहन कर सकती है। एक संवादात्मक गीत में पति अपनी पत्नी को पहली बार ससुराल चलने को कहता है तो पत्नी कुछ कठिनाइयां बतलाती है और पति उन्हें दूर करने का आश्वासन देता है।

चालो तो ले चालूं ए जाली राणी, ले चालूं म्हारोड़े देस।
थारोड़ो देसड़लो तीसालू[68] *गाडा मारु, ना चालूं थारोड़ै देस।*
पग-पग बावड़ी खीणाऊ[69] *ए जाली राणी, ले चालूं म्हारोड़ै देस।*[70]

बिश्नोई सम्प्रदाय में जब बेटा मुकलावा लेकर घर पहुंचता है

तो उसका एवं बहू का भव्य स्वागत होता है। दोनों का "गंठ जोड़ा" करके स्त्रियां गीत गाकर उन्हें गृह-प्रवेश करवाती हैं। घर के आंगन में एक पंक्ति में रखी हुई थालियों को दुल्हा अपने "गेडिये" से इधर-उधर करता रहता है और पीछे चलती हुई दुल्हन उन्हें उठाकर एकत्रित करती रहती है। उसी समय स्त्रियां गाने लगती हैं।

ना खड़काई, ना भड़काई, सासु-बहू गी हवेली लड़ाई।
ना खड़काई ना भड़काई, देराणी-जेठाणी गी हवेली लड़ाई।[71]

आंगन में रखी हुई थालियां परिवार के सदस्यों की प्रतीक होती हैं। बहू का प्रवेश नये सदस्य के रूप में होता है। बहू के द्वारा थालियों को बिना आवाज के एकत्रित करने के पीछे यही भावना काम करती है कि वह परिवार के सभी सदस्यों को प्रेम-सूत्र में बांध कर रखेगी। उसके आने से घर में कलह नहीं होगी और कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती भी है तो उसका यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने व्यवहार से सबको साथ रखेगी और उन्हें बिखरने नहीं देगी।

यद्यपि विवाह सुख के लिए किया जाता है पर सभी विवाह सुखान्त नहीं होते। विवाह के कुछ दिनों बाद ही सास-बहू में ठन जाती है। मां अपने बेटे का बड़े ही लाड-प्यार से पालण-पोषण करती है। उसके लिए वह हर प्रकार के कष्ट सहन करती है। इसी कारण वह उस पर अपना एकाधिकार समझती है पर बहू के आते ही बेटा मां से दूर हो जता है। मां के अधिकार में कमी आने लगती है। मां यही समझती है कि यह सब बहू के कारण हुआ है। इसलिए सास, बहू से इसका बदला लेना चाहती है। इसी भावना के कारण सास-बहू में कलह होती रहती है। यह भी जीवन की सत्यता का एक पक्ष है। इसका चित्रण भी "मुकलावे" के गीतों में हुआ है।

सासु के कुचरैं तूं कुल्हा, मेरा न्यारा मेलाय दे चूल्हा।
धण खड़ी रे बुर्ज गी छइयां।
सासु के फोरैं तूं कोइया, मेरा न्यारा मेलाय दे तइया,
धण खड़ी रे बुर्ज गी छइयां।[72]

बिश्नोई सम्प्रदाय में जब बहू पहली बार ससुराल जाती है, तब उसके साथ उसकी चाची, मामी एवं भाभी आदि में से कोई एक साथ जाती है, जिसे "ओळंदी" कहते हैं। "ओळंदी" का भी संबंधियों द्वारा बहुत आदर-सत्कार किया जाता है और अतिशय प्रेम के कारण मुकलावे के गीतों में ओळंदी को भी गाली गायी जाती है।

म्हारी बहू भला नै आई, आ ओळंदी क्यां नै आई।

आ पोटा रेड़ण नै आई, म्हारी बहू भला नै आई।[73]

पहली बार बहू के आने पर सास की प्रसन्नता, सास-बहू की कलह, ससुराल में बहू का कर्त्तव्य, ससुराल में होने वाले कष्टों की आशंका तथा मुकलावे के समय समाज में होने वाली विभिन्न रस्मों का चित्रण "मुकलावे" के गीतों में हुआ है।

जवाई के गीत

कन्या की विदाई के साथ ही कन्या के यहां विवाह का कार्य पूर्ण हो जाता है। "मुकलावे" के घर पहुंचने तथा वहू के "भधारने" के साथ ही वर पक्ष के यहां विवाह सम्पूर्ण हो जाता है। इस समय तक जितने गीत गाये जाते हैं, वे ही गीत विवाह के गीत माने जाते हैं। यही कारण है कि जवाई के सम्मान में गाये जाने वाले गीतों को विवाह के गीतों में सम्मिलित नहीं किया गया है। जब वर विवाह के वाद ससुराल जाता है, तब वह जवाई कहलाने लगता है। जवाई के ससुराल पहुंचने पर उसके मान-सम्मान में जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें ही "जवाई के गीत" कहते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में ऐसे गीत अधिकतर उसी समय गाये जाते हैं, जब जवाई विवाह के बाद पहली बार ससुराल पहुंचता है। रात्रि में जवाई के लाड-प्यार में गाये जाने वाले इन गीतों को "कुकड़ला" कहते हैं। इनमें जवाई को प्रेममय गालियां भी गायी जाती हैं। जवाई की मां, बुआ, मामी एवं भाभी आदि भी इन गालियों की शिकार होती हैं। आधुनिक समय में बिश्नोई सम्प्रदाय में इन "कुकड़ला" गीतों का प्रयोग पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया है। जवाई के ससुराल पहुंचने पर "एळची" नामक गीत अवश्य गाया जाता है। अवसर विशेष पर जब भी जवाई ससुराल पहुंचता है, तो उसके सम्मान में "एळची" अनिवार्य रूप से गायी जाती है।

कठीड़ै भवारु भंवर थारी एळची।
कठीड़ै भवारु भंवर थारी नागर बैल, मोरियो ए मां।[74]



सन्दर्भ

1. राजस्थानी निबन्ध संग्रह-सौभाग्य सिंह शेखावत, पृ. 266
2. राजस्थानी लोक साहित्य-नानूराम संस्कर्ता, पृ. 87
3 बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनबारी लाल सहू, पृ. 32
4. बिश्नोई लोकगीत " पृ 32
5 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 32

6 · बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 33
7. बिश्नोई लोकगीत " पृ 33
8. बिश्नोई लोकगीत, भूमिका (डॉ. कमला रत्नम्), पृ. च
9. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 34
10. बिश्नोई लोकगीत " पृ 35
11. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 36
12. बिश्नोई लोकगीत " पृ 36-37
13. बिश्नोई लोकगीत " पृ 36
14. बिश्नोई लोकगीत " पृ 37
15. बिश्नोई लोकगीत " पृ 39
16. बिश्नोई लोकगीत " पृ 45
17. बिश्नोई लोकगीत " पृ 45
18. बिश्नोई लोकगीत " पृ 45
19. बिश्नोई लोकगीत " पृ 46
20. बिश्नोई लोकगीत " पृ 47
21. बिश्नोई लोकगीत " पृ 48
22. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 48-49
23. बिश्नोई लोकगीत " पृ 49
24. बिश्नोई लोकगीत " पृ 50
25. बिश्नोई लोकगीत " पृ 50
26. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 51
27. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 53
28. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 53
29. बिश्नोई लोकगीत " पृ 55
30. बिश्नोई लोकगीत " पृ 61
31. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 61
32. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम (शाश्वत स्वर)-प्रो शान्ति जैन, पृ *XII*
33. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ 62
34 बिश्नोई लोकगीत - " पृ. 66
35. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 66
36. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 67
37. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 67
38 बिश्नोई लोकगीत " पृ 68
39. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 69
40 बिश्नोई लोकगीत " पृ 69
41. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 69
42. बिश्नोई लोकगीत " पृ 70
43. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 73
44. बिश्नोई लोकगीत " पृ 74

45 बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 78
46 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 80
47 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 80
48 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 80
49 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 81
50. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 82
51. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 83
52 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 83
53 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 84
54 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 84
55. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 84
56. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 84
57 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 87
58 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 87
59 सौभाग्य सिंह शेखावत - राजस्थानी निबन्ध संग्रह, पृ. 272
60 बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ 87
61 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 86
62 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 87
63 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 88
64. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 88
65. गांव की सीमा
66. गांव के निकट का खेत
67. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ 92
68. प्यासा
69 खुदवाना
70. बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 93
71 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 94
72 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 93
73. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 94
74. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 91

मृत्यु-गीत

हिन्दू धर्म में जन्म से मृत्यु तक सोलह संस्कार माने गये हैं। इन संस्कारों में मृत्यु अन्तिम संस्कार है। सभी संस्कारों पर गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। यद्यपि मृत्यु का समय शोक एवं रूदन का होता है तथापि अन्य जातियों की तरह विश्नोई सम्प्रदाय में भी इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं। मृत्यु के गीत शोक, करुणा एवं विलाप से युक्त होते हैं। इन गीतों में एक ओर मृतक के गुणों का वर्णन रहता है तो दूसरी ओर उसके अभाव में उत्पन्न कष्ट एवं परिवार की शोचनीय स्थिति का चित्रण किया जाता है।

मृत्यु पर गीत गाने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। ऋग्वेद में किसी व्यक्ति की मृत्यु पर विलाप करने के कई सूक्त मिलते हैं।[1] रामायण एवं महाभारत में भी विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के उदाहरण हैं। इनको मृत्यु-गीत के अन्तर्गत ही माना जा सकता है। कालिदास ने भी "कुमार सम्भव" में काम देव के भस्म होने पर रति का विलाप करवाया है।[2] मृत्यु-गीतों को उर्दू साहित्य में मरसिया कहते हैं। ये उर्दू-साहित्य की अमूल्य निधि है। अंग्रेजी साहित्य में भी शोक-गीत प्रचलित हैं, जिन्हें "एलेजी" कहते हैं।

"स्त्रियों का हृदय इतना कोमल और अनुभूति इतनी तीव्र होती है कि सुख में, दु:ख में, आशा में, निराशा में, प्रत्येक स्थिति में उनके हृदय से कविता की उत्पत्ति एवं गीत की स्फुरणा अनायास ही होने लगती है।[3] ऐसी स्थिति में मृत्यु जैसी कारुणिक घटना पर नारी की भावना गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त होना स्वाभाविक है। मृत्यु के अवसर पर स्त्रियों के रूदन में भी एक लय मिलती है और अभिप्राय भी होता है।[4] इसी कारण भारत वर्ष में मृत्यु के अवसर पर स्त्रियों का विलाप एवं गीत-गाने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित है। ये गीत वास्तव में शोक पूर्ण हृदय के उद्‌गार होते हैं। इसीलिए विश्व के सभी देशों में मृत्यु गीतों में साधारणतया एक ही प्रकार के भाव व्यक्त हुए हैं। मृतक के गुणों, ईश्वर स्मरण करने का

उपदेश, संसार की नश्वरता एवं झूठा माया-मोह आदि विषय ही मृत्यु-गीतों के मुख्य विषय रहे हैं, पर जाति विशेष के मृतक संस्कार के रिवाज, भाषा एवं लय आदि के कारण मृत्यु गीतों में अन्तर पाया जाता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में मृतक को जमीन में गाडने के कारण एवं आडम्बरहीनता के कारण गंगाजी आदि जाने की प्रथा नहीं है। इसीलिए बिश्नोई समाज के मृत्यु गीतों में गंगाजी जाने एवं वहां जाकर दान देने का उल्लेख नहीं है, जब कि दूसरी जातियों के मृत्यु गीतों में इन सब बातों का वर्णन है।

मृत्यु जीवन का अटल सत्य है। जब मनुष्य के शरीर से प्राण निकल जाते हैं, तब उसे मृत माना जाता है। मनुष्य के मृत होने पर उसके प्राण रहित शरीर को पंच तत्वों में विलीन कर दिया जाता है, इसे ही अन्तिम संस्कार कहा जाता है। अन्तिम संस्कार की क्रिया भी अलग-अलग जातियों में अलग-अलग है। अन्तिम संस्कार के रूप में जलदाग, भूमिदाग, अग्निदाग एवं वायुदाग ही प्रचलित है। अन्य संस्कारों की तरह बिश्नोई सम्प्रदाय का अन्तिम संस्कार भी अन्य जातियों से भिन्न है। बिश्नोई सम्प्रदाय में भूमि दाग की प्रथा प्रचलित है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से यह प्रथा बहुत ही वैज्ञानिक एवं उत्तम है। बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जाम्भोजी पर्यावरण संरक्षण के प्रबल समर्थक रहे हैं। उनके द्वारा प्रणीत बिश्नोई सम्प्रदाय के उनतीस नियमों में कई नियम पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित हैं और बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रचलित भूमिदाग को भी पर्यावरण संरक्षण की एक कड़ी माना जा सकता है। इसके साथ ही साथ मरुभूमि की भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की दृष्टि से भी यह प्रथा अत्यन्त उपयोगी कही जा सकती है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में एक मान्यता यह भी है कि व्यक्ति के प्राण पलंग पर न निकल कर धरती पर ही निकले। इसलिए मरनासन्न व्यक्ति को धरती पर लेटाया जाता है और उसे जाम्भोजी कृत सबदवाणी का कुंची वाला 'सबद' सुनाया जाता है। सांस निकलने के बाद सूरज के प्रकाश में मृतक के निकट के सम्बन्धी मृतक को गंग जल युक्त पानी से स्नान करवाते हैं और पुरुष को सफेद एवं स्त्रियों को रंगीन वस्त्र का कफन उढ़ाया जाता है। इसके बाद ज्वार या बाजरी के तिनकों की शैय्या पर मृतक को सुलाकर मृतक के परिवार के चार व्यक्ति नंगे पांव अपने हाथों पर मृतक को उठाकर श्मशान भूमि ले जाते हैं। श्मशान भूमि में पहले से तैयार किये गये मृतक के घर में [5] तृण-शैय्या से रहित मृतक को उत्तर की ओर सिर करके सुला देते हैं और फिर सभी सम्बन्धी उस घर को खोदी गई मिट्टी से भर देते हैं। अन्त में उस पर कुछ पानी के छींटे देकर पक्षियों के चुगने के लिए अनाज

के दाने डाल देते हैं। श्मशान जाने वाले सभी व्यक्ति श्मशान के पास के तालाब या घर आकर स्नान करते हैं। घर आने के बाद घर के सदस्य भोजन करने से पूर्व मृतक को उसका प्रिय भोजन कौवों को खिलाते हैं, इसे ही कागोळ देना कहते हैं। यह कागोळ घर की मुंडेर पर दोनों समय पाणी ढ़ाल (खर्च वाले दिन) से पूर्व तक दी जाती है। पाणी ढ़ाळ वाले दिन अन्तिम कागोळ श्मशान भूमि में मृतक के बने घर पर दी जाती है। मृतक के लिए थाली में रखे गये भोजन को जब कौवा ग्रहण कर लेता है तो इसे मृतक के जीव द्वारा ग्रहण करना माना जाता है। कागोळ देने के बाद घर आकर घर के लोग ऊनी वस्त्र में अनाज के कुछ दानें डालकर पानी से भरे हुए घड़े के जल को उस वस्त्र से छानते हुए खेजड़ी-वृक्ष की जड़ में बरसा देते हैं, इसे ही 'बारा ढाळना' कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि "बारा ढ़ाळ" की क्रिया खर्च वाले दिन के साथ ही मृतक के जीव की उस घर से अन्तिम विदाई हो जाती है।

विश्नोई समाज में सूतक तीन दिन तक रहता है। ऐसी मान्यता है कि मृतक का जीव तीन दिन तक अपने सांसारिक घर में रहता है और उसके बाद वह अन्य लोक में चला जाता है। विश्नोई सम्प्रदाय में जो तीसरे दिन हवन एवं पाहळ किया जाता है, इसी के द्वारा मृतक के घर का सूतक समाप्त हो जाता है और घर पवित्र हो जाता है। इसी पवित्र हुए घर का अन्न-जल सम्बन्धी एवं मित्रगण ग्रहण करते हैं और इसके बाद जो दान दिया जाता है, वही मृतक के मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है। खर्च के दिन सम्बन्धियों एवं मित्रों के भोजन करने के उपरान्त मृतक के बेटे-पोतों को उनके ससुराल पक्ष की ओर से चद्दर एवं पगड़ी भेंट की जाती है जिसे 'पागड़ी-पोतिया' करना कहते हैं। स्त्रियों को भी उनके पीहर की ओर से वस्त्र भेंट किये जाते हैं। इन वस्त्रों को शोक समाप्ति का प्रतीक माना जाता है। अन्य संस्कारों की तरह बिश्नोई सम्प्रदाय का यह संस्कार भी आडम्बर हीन है। सरलता, सादगी एवं सुविधा आदि का इसमें सर्वाधिक महत्त्व है।

विश्नोई सम्प्रदाय में भी मृत्यु के समय गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। इस सम्प्रदाय में मृत्यु - संस्कार से संबंधित गीत दो प्रकार के हैं – एक वे जो किसी युवक की मृत्यु पर गाये जाते हैं, जिन्हें "मुंह ढ़कणा" कहते हैं। इस तरह के गीत बहुत ही कम हैं। युवक की मृत्यु अत्यन्त दुःखद होती है। इस दुःखद वातावरण में युवा मृतक के निकट के संबंधी तो विलाप ही करते रहते हैं पर दूर के संबंधवाली स्त्री-कभी-कभी गीत की एक-दो पंक्ति बड़े की कारूणिक ढंग से गाकर आती है। इस तरह के गीतों में मुख्य रूप में युवक के अभाव में परिवार को होने वाले दुःख का वर्णन किया जाता है। दूसरे प्रकार के मृत्यु गीत वे हैं, जो किसी

वृद्ध स्त्री या पुरुष की मृत्यु पर गाये जाते हैं। इन गीतों को "हरजस" कहते हैं। मृत्यु के तीसरे दिन, जब पाणी ढ़ाळ होता है, उस दिन मृतक के घर उसके संबंधी एवं अन्य जान पहचान वाले आते हैं। इस उत्सव में स्त्री एवं पुरुष दोनों ही आते हैं। इन स्त्रियों में जो मृतक के बहुत निकट संबंध वाली होती हैं, वे तो विलाप करके ही आती हैं पर उनके साथ आने वाली स्त्रियां गीत गाकर ही आती हैं, जिसे हिंडोळ्या या हर का हिंडोळ्या कहते हैं। इस दिन स्त्रियों के झुंड के झुंड आते रहते हैं। इनमें मृतक के निकट संबंधवाली स्त्री झुंड के आगे आगे विलाप करती हुई चलती है और शेष पीछे चलने वाली स्त्रियां हिंडोळ्या गाती हुई प्रवेश करती है। निकट सम्बन्ध वाली स्त्री द्वारा विलाप करने का वर्णन भी "हिडोळे" में हुआ है।

दूर देसां री ओ जामी थारी धीवड़ी, आवेली गुवाड़ गुंजाय।
आयो हलकारो श्री भगवान रो।।[6]

"हिंडोळे" गीत में ईश्वर द्वारा भेजे गये हिंडोळे (पालकी) में बेटो एवं बहुओं आदि द्वारा सजाकर आसीन किये हुए मृतक के स्वर्गारोहण का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस गीत में मृतक के लिए पालकी का आना, मृतक को स्नान कराना, श्रृंगार करके पालकी में बैठाना, बेटो-पोतों द्वारा श्मशान तक पहुंचाने एवं उसके लिए दान-पुण्य करने का वर्णन है।

मृतक के परिवार के सदस्य यह चाहते हैं कि मृतक को स्वर्ग ही मिले, इसलिए उसे लेने के लिए जो पालकी आई है, वह स्वर्ग से ही आयी है, इन्हीं भावों का वर्णन गीत के प्रारम्भ में हुआ है।

कठोड़ै सूं आई बडेरो थानै पालकी, कठोड़ै सूं आया रे बिवाण।
आयो हलकारो श्री भगवान रो।।
सुरगा सूं आई बडेरो पालकी, हर दरगा सूं आयो रे बिवाण।
आयो हलकारो श्री भगवान रो।।[7]

परमात्मा का निमन्त्रण आने पर आत्मा को इस संसार से जाना ही पड़ता है। पर जिस व्यक्ति का घर बेटों एवं पोतों से भरा हुआ हो, उसकी मृत्यु सुखद मानी जाती है। इसीलिए गीत में कहा गया है कि :-

बेटा-पोता थारै मोकळा, थानै रळमळ मंजल पौंचाय।
आयो हलकारो श्री भगवान रो।।[8]

मृतक की आत्मा को स्वर्ग मिले, इस उद्देश्य से विश्नोई सम्प्रदाय में मृतक के पीछे दान-पुण्य करने की प्रथा है। पांचों वस्त्र एवं गाय आदि का दान किया जाता है। इस दान में गौ-दान का सबसे अधिक महत्त्व है। पौराणिक

कथा के अनुसार स्वर्ग के रास्ते में नदी पड़ती है, उसे पार करने में गऊमाता का सबसे अधिक सहयोग रहता है। गऊ की पूंछ पकड़ कर मृतक इस सांसारिक वैतरणी को पार कर सकता है।

गऊ तो देवां ओ जामी थानैं दूजती, पूंछ पकड़ तिर जाय।
आयो हलकारो श्री भगवान रो।।[9]

विश्नोई सम्प्रदाय मे किसी की मृत्यु होने पर आने वाले त्यौहार तक शोक रखने की प्रथा रही है। पर अब यह शोक उनतीस दिनों तक ही रहता है। इस बीच उनके संबंधी एवं मित्रगण मिलने के लिए आते रहते हैं। मृत्यु के दिन से शोक समाप्ति के दिन तक रात्रि में भी स्त्रियां गीत गाती हैं, जिन्हें "हरजस" (ईश्वर-कीर्ति) कहते हैं। "हरजस" द्वारा ईश्वर का गुण गान किया जता है। इस अवधि में गीतों द्वारा जो ईश्वर-स्मरण किया जाता है, उसका फल मृतक की आत्मा को मिले, इसी उद्देश्य से बिश्नोई सम्प्रदाय में मृतक के पीछे कई दिनों तक "हरजस" गाये जाते हैं। रात्रि में गाये जाने वाले इन गीतों में मृतक के गुणों, संसार की नश्वरता एवं दान-पुण्य आदि के साथ-साथ ईश्वर के विभिन्न अवतारों के श्रेष्ठ कार्यों एवं गुणों का वर्णन किया जाता है।

मनुष्य का भौतिक एवं अध्यात्मिक जीवन सुखी रहे, इसलिए वह अपने जीवन काल में दान-पुण्य करता रहता है। मृत्यु के बाद भी मृतक के बेटे-पोते जो दान देते हैं, वे भी इसलिए देते हैं कि उसका फल मृतक को मिल जाये। इसी भाव को एक हरजस में व्यक्त किया गया है।

आगे री जांते प्राणी प्यास लगैली, थे किस विध उतरोला पार?
श्री राम-राम।।
बेटा-पोता तो राम जी प्याऊ लगावें, बा म्हानै आगै लाधै तैयार।
श्री राम-राम।।[10]

जब व्यक्ति मृत्यु के निकट पहुंच जाता है, तो उसका संसार से मोह कम हो जाता है। उसे संसार की कोई भी वस्तु रूचिकर नहीं लगती। उसका ध्यान इस घर की अपेक्षा दूसरे घर की ओर अधिक रहने लगता है। इस स्थिति का चित्रण भी एक हरजस में किया गया है।

बेटा लाया चूरमो, थे ल्यो नी बडेरो।
के रे करां बेटा चूरमैं रो, मेरी सुरगा नैं तैयारी।
ज्ञान लग्यो सुरज्ञान रे हरि रे जंजीरी।।[11]

मनुष्य अपने जीवन काल में अपनी एवं अपने परिवार की

समृद्धि चाहता है और उसके लिए जीवन पर्यन्त प्रयास करता है। वह यह भी चाहता है कि उसकी मृत्यु के बाद भी उसके परिवार की समृद्धि होती रहे, इसलिए वह मरने से पूर्व अपने परिवार को कुछ ऐसी शिक्षा देता है, जिससे उसका परिवार उतरोत्तर विकास करता रहे। इस शिक्षा का वर्णन भी एक हरजस में हुआ है।

तूं तो घड़ी एक टम जा रामइया, बेटा नैं दे आऊं सीख ।
चाला ला राम द्वारका ।।
बेटो रसियो-बसियो भाइयां में, सखरा कारज सार ।
म्हे जावां राम द्वारका ।।[12]

जाम्भोजी ने अपनी सबदवाणी में अच्छे कर्म करने पर सर्वाधिक बल दिया है। उनके अनुसार मनुष्य के अच्छे कर्मों से ही उसका भौतिक जीवन सुखी होता है और यही अच्छे कर्म मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। उपर्युक्त गीत में भी वृद्ध द्वारा अच्छे कर्म करने पर बल दिया गया है। वृद्ध को यह पूर्ण विश्वास है कि अच्छे कर्मों के द्वारा ही उसके परिवार की सुख-समृद्धि रह सकती है। इस तरह यह गीत जाम्भोजी की विचारधारा के ही अनुरूप है।

मृत्यु जीवन का सत्य है। इसे किसी भी रूप से टाला नहीं जा सकता। बार-बार संसार में आकर मरना न पड़े, इसके लिए ईश्वर – स्मरण ही एक साधन है। इसी आधार पर बिश्नोई समाज के मृत्यु-गीतों में आत्मा को ईश्वर स्मरण का उपदेश दिया गया है। सांसारिक मोह-माया को त्याग कर ईश्वर स्मरण करने की प्रेरणा इन गीतों में मुख्य रूप से रही है। सांसारिक धन-दौलत और पारिवारिक संबंध सब झूठे और अस्थिर हैं। पर मनुष्य सांसारिक मोह-माया के आकर्षण के कारण ईश्वर को भूल जाता है और मानव जीवन का अमूल्य अवसर खो देता है।

आधी सी रात आया जमदूत, छौड़ चली घर बार।
हरिभजन बिना हीरो सो जनम गंवायो।।[13]

इस संसार में मनुष्य को अनेक प्रकार के दुःख सहन करने पड़ते हैं। इन दुःखों में अपने प्रियजन की मृत्यु का दुःख सबसे अधिक कष्ट दायक होता है पर इस दुःख का सामना संसार में हर व्यक्ति को किसी न किसी रूप में अवश्य ही करना पड़ता है। इसलिए कुछ "हरजस" मृत्यु पर शोक न प्रकट करने के उपदेशों से संबंधित है। ऐसे गीत मृतक के संबंधियों को धैर्य बंधाने के उद्देश्य से गाये जाते हैं।

चांद-सूरज दोन्यू रे भाई, घेण हयो जद यामैं बिपत्या पड़ी।
मैं जाणू मैरै में पड़ी, आ बिपत्या सारी दुनिया में पड़ी।

कालू-वालू दोन्यू रे भाई, वांरा पिताजी गुजरया जद वामै विपत्या पड़ी।
मैं जाणू मेरे में पड़ी, आ विपत्या सारी दुनिया में पड़ी।।[14]

विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जाम्भोजी ने सबदवाणी में उत्तम कर्म को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। श्रेष्ठ कार्यों से ही मनुष्य का भौतिक जीवन सुखमय बनता है और साथ ही मनुष्य आवागमन से मुक्त हो सकता है। इसी आधार पर विश्नोई सम्प्रदाय में भी कर्म को बहुत महत्त्व दिया गया है। वास्तव में "कर्ममय जीवन की नींव पर ही सम्प्रदाय का मुख्य ढ़ांचा निर्मित है।[15] व्यक्ति जैसे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। मृत्यु के बाद जीव के अच्छे-बुरे कर्म ही उसके साथ जाते हैं। वहां पहुंचते ही जीव से उसके कर्मों का हिसाब पूछा जाता है। इसका उल्लेख जाम्भोजी ने एक सबद में किया है।

आयो हंकारो जीवड़ो बुलायो,
कहि जीवड़ा, के करण कुमायो?
थरहर कंपै जीवड़ो डोलै,
उत माई पीव न कोइय न बोलै।
सुकरत साथि सखाई चालै।[16]

इसी प्रकार एक "हरजस" में कहा गया है कि जब जीव इस संसार से जाता है, तो वहां वह जब कुछ मांगता है, तो उसे यही कहा जाता है कि यहां किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है पर वह मिलेगी उसे ही, जो उसका अधिकारी है या जिसने उस वस्तु को प्राप्त करने के अनुकूल कर्म किये हैं।

अब तो सांवरा प्यास लगी है, प्यास लगी है, पाणी लाय।
हरि भजन विना हीरो सो जनम गंवायो।।
कोरा-कोरा मटका प्राणी पड़या रे सिराणे, पायो है तो पी।
हरिभजन विना हीरो सो जनम गंवायो।।[17]

यह बात सुनकर जीव को बड़ा पश्चाताप होता है, क्योंकि उसने अपने जीवन काल में ऐसा कोई सुकृत नहीं किया था, जो उसकी सहायता कर सके। इसी कारण वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि उसे एक बार फिर संसार में मनुष्य के रूप में जाने का अवसर दिया जाय, जिससे वह अच्छे कर्म कर सकें।

एक रै तो सांवरा पाछै जी मेलो, धरम करूं लख चार।
हरिभजन बिना हीरो सो जनम गंवायो।।[18]

मृत्यु-गीतों में जहां एक ओर मृतक के द्वारा किये गये कार्यो का वर्णन रहता है, वहां दूसरी ओर उसके अभाव में होने वाले कष्टों का वर्णन भी

रहता है। मां के मरने पर एक बेटी के माध्यम से इस प्रकार के भाव एक हरजस में अभिव्यक्त हुए हैं :-

मनड़ै री मन में बडेरो म्हारे रह गई
दिलड़ै री दिल में रह गई जामण म्हारी।
कुणा जी ओढ़ावै ए जामण चोरंग चूंदड़ी?
कुणा जी ओढ़ावै लाल लुंकार?[19]

मनुष्य के इस संसार से चले जाने पर कुछ समय तक उसके अधूरे कार्य वैसे ही पड़े रहते हैं। उसके संबंधियों एवं मित्रों को उसका अभाव खटकता है। यहां तक कि उसके संसर्ग में रहने वाले पशु पक्षियों को भी उसका विछोह कष्ट पहुंचाता है और वे उदास हो जाते हैं। इस तरह विश्नोई लोकगीतों में जीवन की समग्रता का चित्रण सर्वत्र हुआ है।

तेरी खड़ी रे ढींकै धोळी गाय,दूवण वाळी बडेरो कोयनी हर राम।[20]

बिश्नोई सम्प्रदाय के मृत्यु-गीतों में मृतक के गुणों, उसके अभाव में परिवार के कष्टों, जीवन में श्रेष्ठ कर्मों का महत्त्व, सम्प्रदाय की आडम्बर हीनता, मृतक के पीछे परिवार द्वारा दिये जाने वाले दान के वर्णन के साथ-साथ *ईश्वर के विभिन्न अवतारों के कार्यों, गुणों एवं मनुष्य द्वारा सांसारिक मोह-माया* को त्याग कर ईश्वर स्मरण करने के उपदेशों का ही वर्णन मुख्य रूप से हुआ है। एक ओर इन गीतों में मृत्यु के अवसर पर प्रकट होने वाले सामान्य भावों की अभिव्यक्ति हुई है तो दूसरी ओर बिश्नोई सम्प्रदाय के मृत्यु से संबंधित रीति-रिवाज, धार्मिक मान्यताएं एवं सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण बिश्नोई सम्प्रदाय के मृत्यु-गीतों का अन्य लोकगीतों में अपना अलग वैशिष्ट्य है।



सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 10/14/7
2. कुमार सम्भव-कालिदास
3. राजस्थानी लोकगीत-डॉ स्वर्णलता अग्रवाल, पृ. 90
4 बृजलोक साहित्य-डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 232
5 जमीन में खोदा गया चार-पांच फुट गहरा एवं लगभग 6 फुट लम्बा खड्डा ही मृतक का घर कहलाता है।
6. बिश्नोई लोक गीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 97
7 बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 95

8. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ 96
9. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 97
10. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 99
11. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 97
12. बिश्नोई लोकगीत " पृ 98
13 बिश्नोई लोकगीत " पृ 100
14. लेखक के निजी संग्रह से
15. जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य-डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 433
16. जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका)-सम्पादक डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 67
17. बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 101
18. बिश्नोई लोकगीत " पृ 101
19. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 103
20. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 104

देवी-देवताओं एवं मेलों के गीत

यद्यपि विश्नोई सम्प्रदाय हिन्दू समाज का एक अभिन्न अंग है तथापि इसका अपना अलग वैशिष्ट्य है। इसके सिद्धान्त, विचारधारा, दर्शन एवं आचरण आदि सब भिन्न हैं। इसी भिन्नता के कारण विश्नोई समाज के रीति-रिवाज, धार्मिक मान्यताएं, देवी-देवता एवं मेले आदि भी भिन्न है। इस भिन्नता का कारण हिन्दू समाज के विरोध में रहना नहीं है पर अपना अलग वैशिष्ट्य बनाना अवश्य है। यही वैशिष्ट्य विश्नोई सम्प्रदाय की अपनी पहचान है। यही वैशिष्ट्य सम्प्रदाय के सभी क्षेत्रों में प्रकट होता रहता है। इसी वैशिष्ट्य के कारण उसे विशाल मानव समाज में अपने विलीन होने का भय नहीं है। वह उत्तरोत्तर विकास कर रहा है। विश्नोई सम्प्रदाय का यह वैशिष्ट्य उसके देवी-देवताओं एवं समाज में आयोजित होने वाले मेलों में भी देखा जा सकता है, जिनमें आडम्बर हीनता है, सादगी एवं सरलता प्रमुख है। इसी वैशिष्ट्य के कारण विश्नोई सम्प्रदाय के देवी-देवताओं एवं मेलों से सम्बन्धित लोक गीत अलग हैं। उनका अपना वैशिष्ट्य है। लोकगीतों का यही वैशिष्ट्य बिश्नोई सम्प्रदाय की लोक साहित्य को एक अमूल्य देन है। आगे बिश्नोई सम्प्रदाय के देवी-देवताओं एवं मेलों से सम्बन्धित लोकगीतों एवं उनके सांस्कृतिक पक्ष का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

1. जाम्भोजी एवं मेलों से सम्बन्धित गीत

भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व रहा है। धर्म का पालन करने से मानव का भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन सफल होता है। चार पुरुषार्थों में मोक्ष अन्तिम पुरुषार्थ है और मोक्ष की प्राप्ति धर्म के पालन करने से ही सम्भव है। इसी कारण भारतीय लोक जीवन में धर्म के प्रति गहरी आस्था रही है। शिक्षा के अभाव में सामान्य जन चाहे धर्म के वास्तविक रूप को न समझता हो पर परम्परागत धार्मिक मान्यताओं के प्रति उसकी पूर्ण आस्था रही है। इसीलिए धर्म लोक-जीवन का अभिन्न अंग रहा है। ग्रामीण

जनता में आज भी धार्मिक मान्यताओं के प्रति गहरी आस्था है।

पाश्चात्य प्रभाव एवं शिक्षा के कारण आज लोगों में धार्मिक भावना शिथिल होती जा रही है पर बिश्नोई सम्प्रदाय पाश्चात्य प्रभाव से बहुत कम प्रभावित हो पाया है। शिक्षा के व्यापक प्रसार के अभाव में बिश्नोई सम्प्रदाय का स्त्री वर्ग इस प्रभाव से पूर्ण रूप से अछूता रहा है। इसीलिए बिश्नोई सम्प्रदाय में आज भी धार्मिक मान्यताएं बहुत सीमा तक अपने मूल रूप में सुरक्षित है और उनको वहुमत का आधार प्राप्त है। इन्हीं धार्मिक मान्यताओं में सम्प्रदाय का सांस्कृतिक पक्ष सुरक्षित है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में धार्मिक दृष्टि से सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री जाम्भोजी का जितना महत्त्व है, उतना किसी अन्य का नहीं है। समाज उनके द्वारा बताये हुए उनतीस नियमों का पालन क़र रहा है। प्रारम्भ से ही समाज जाम्भोजी को विष्णु के रूप में मानता है और पूजा करता है। संकट आने पर जाम्भोजी को ही स्मरण किया जाता है एवं संकट के टलने पर भी उसे जाम्भोजी की ही कृपा समझते हैं। कार्य की सफलता एवं अपनी भलाई हेतु लोग जाम्भोजी को विशेष आयोजनों द्वारा स्मरण करते रहते हैं। इसीलिए समाज में जो लोक भजन प्रचलित हैं, वे अधिकांश जाम्भोजी से ही संबंधित है। ये भजन अमावस्या, एकादशी एवं जाम्भोजी के विभिन्न मेलों के अवसर पर गाये जाते हैं। जाम्भोजी के "जम्मे" में भी गायनाचार्यो द्वारा जाम्भोजी से संबंधित विशिष्ट कवियों के भजन गाये जाते हैं।

भारत वर्ष धर्म परायण देश है। यहां विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं। सभी धर्मों के अलग-अलग मेले लगते रहते हैं। इन मेलों का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक आदि सभी दृष्टियों से बहुत महत्त्व है। किसी न किसी देवी-देवता से संबंधित होने के कारण प्रत्येक मेले का मूल आधार तो धार्मिक ही होता है पर मेले के माध्यम से लोगों में परस्पर मिलना भी हो जाता है और सामाजिक समस्याओं का निदान भी हो जाता है। कभी-कभी इन मेलों में वैवाहिक संबंध भी निश्चित हो जाते हैं और लोगों के मन-मुटाव भी दूर हो जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से भी ये मेले ग्रामीण जनता के लिए बड़े उपयोगी प्रामाणित होते हैं। "इन मेलों का मुख्य आकर्षण होता है भयातुर, निराश, हारे, थके मानवों की अपने आराध्य से प्राप्त वर के सहारे फिर से आशा, आत्म विश्वास, सन्तोष और सुख प्राप्त करने की कामना"।[1]

विश्नोई समप्रदाय के भी विभिन्न स्थानों पर अनेक मेले लगते हैं। जाम्भोजी का जिन-जिन स्थानों से विशेष संबंध रहा है, वे ही स्थान सम्प्रदाय के

पवित्र तीर्थ स्थल बने हुए हैं। इन तीर्थ स्थलों पर समय-समय पर मेले लगते हैं एवं बिश्नोई इन मेलों में पहुंचकर अपने आराध्य देव के प्रति अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं। सम्प्रदाय के धार्मिक गीतों में इन पवित्र स्थलों एवं मेलों का पर्याप्त वर्णन हुआ है।

लालासर में वणी रे साथरी, मेळो वणयो रे मुकाम।[2]

लालासर एवं मुकाम दोनों ही स्थान जाम्भोजी जी से संबंधित हैं और इन दोनों स्थानों पर ही मेले लगते हैं। जाम्भोजी ने अपना भौतिक शरीर सम्वत् 1593 की मार्ग शीर्ष बदी नवमी को लालासर में त्यागा था। निर्वाण तिथि होने के कारण इसी दिन लालासर की साथरी पर सम्प्रदाय का मेला लगता है। मुकाम में जाम्भोजी की समाधि है और इस पर मन्दिर बना हुआ है। यहां वर्ष में दो मेले लगते हैं। मुकाम के मेले में जाने का उत्साह स्त्री-पुरुष एवं बच्चों में समान रूप से रहता है। इन मेलों में परिवार के परिवार ही पहुंचते हैं। आस-पास के लोग ऊंठ-गाडों एवं ट्रेक्टरों पर बैठकर आते हैं। स्त्रियां रास्ते में भी भजन गाती हुई सुनाई देती हैं और मुकाम में मन्दिर के चौक पर बैठकर भी भजन गाती रहती हैं। मुकाम से समराथळ धोरे आते-जाते समय भी स्त्रियों द्वारा भजन गाये जाते हैं। सम्प्रदाय के *लिए इससे अधिक पवित्र कोई स्थान नहीं है।* इसीलिए एक गीत में मुकाम-मन्दिर की प्रशंसा की गई है।

मन्दिर जाम्भोजी गो म्हानै आछो लागै महाराज।[3]

भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में रहने वाले बिश्नोई मुकाम के मेले में अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित करने आते हैं। एक गीत से भी इसकी पुष्टि होती है।

चारा खूंटा गा आया रे जातरी, लूळ-लूळ लागै थारै पांव।[4]

मेले की अमावस्या को यहां पर कई मन घी का हवन होता है एवं "जातरी" अपनी श्रद्धानुसार जीव दया भावना से प्रेरित होकर पक्षियों के लिए मोठ-बाजरी का चूण बिखेरते हैं। यह चूण प्रतिदिन मन्दिर के चौक पर डाला जाता है, जिसे यहां रहने वाले पक्षी बड़े ही प्रेम से चुगते हैं।

मोठ-बाजरी गा चूण बरसावै, लूळ-लूळ लागै थारै पांव।
मन्दिर जाम्भोजी गो म्हानै आछौ लागै महाराज।
धोळी-पीळी पांख्या रा आया रे परेवा, गुट-गुट चुगैला चूण।[5]

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि वील्हो जी ने भी अपनी प्रसिद्ध रचना "उमाहो" में मुकाम के मन्दिर के छज्जों पर कबूतरों के रहने, चूण चुगने एवं विष्णु का स्मरण करने का वर्णन किया है।

धन्य परेवा बापड़ा, छाजै बसै मुकाम
चूण चुगैं गुटका करैं, सदा चितारैं साम।[6]

जाम्भोजी द्वारा बातये गये उनतीस नियमों में से एक नियम "जीवों पर दया करो" भी है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से धरती पर रहने वाले जीवों में सन्तुलन रहना आवश्यक है। इसलिए सभी जीवों की रक्षा करना मानव का कर्त्तव्य है। बिश्नोई सम्प्रदाय के लोग प्रारम्भ से ही जीव दया की भावना से प्रेरित होकर पक्षियों को चूण डालते हैं एवं अपने प्राण न्यौछावर करके वन्य प्राणियों की रक्षा करते हैं। यह इस सम्प्रदाय की एक ऐसी विशेषता है, जिससे इस सम्प्रदाय का अपना अलग वैशिष्ट्य है। इस वैशिष्ट्य के लिए इस सम्प्रदाय के लोगों ने अपने जीवन का त्याग करके मानव समाज की जो सेवा की है, वह अनुपम है। बिश्नोई सम्प्रदाय की यही जीव दया की भावना सम्प्रदाय के मेलों से सम्बन्धित लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में देश के विभिन्न भागों में लगने वाले जितने मेले हैं, वे सभी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जाम्भोजी से संबंधित है। केवल खेजड़ली में आयोजित होने वाला मेला बिश्नोई सम्प्रदाय की वृक्ष-प्रेम की भावना का प्रतीक है। हरे वृक्षों को नहीं काटना और उनकी रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने की प्रेरणा भी सम्प्रदाय को जाम्भोजी से ही प्राप्त हुई है। जाम्भोजी की शिक्षा से प्रेरित होकर ही 363 बिश्नोई स्त्री-पुरुषों ने वृक्षों की रक्षा हेतु अपने प्राण न्यौछावर किये थे। इन्हीं शहीदों की याद में खेजड़ली में प्रति वर्ष भादों बदी दशम को मेला लगता है। इस मेले में एवं सम्प्रदाय के अन्य सभी मेलों में स्त्रियों द्वारा अधिकतर जाम्भोजी से संबंधित लोक भजन गाये जाते हैं। जाम्भोजी की शिक्षा के प्रभाव के कारण सम्प्रदाय के सभी मेलों में प्रेम, सहयोग, करूणा एवं अनुशासन का एक अनुपम वातावरण रहता है।

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए उत्तम कर्म एवं विष्णु स्मरण के साथ-साथ ईश्वर-कृपा भी आवश्यक है। सम्प्रदाय के धार्मिक गीतों में भी ईश्वर से मोक्ष हेतु प्रार्थना की गई है।

मेरी चौरासी जूण हटाद्यो, ओ म्हाहड़ा गा बदरीनाथ।[7]

मोक्ष-प्राप्ति में ईश्वर-कृपा के साथ-साथ मनुष्य द्वारा अच्छे कर्म करने भी आवश्यक है। बिश्नोई सम्प्रदाय में तो कर्म का ही अधिक महत्त्व है। जाम्भोजी ने भी अपने अनेक सबदों में कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित किया है और अच्छे कर्मों पर सर्वाधिक बल दिया है। मनुष्य द्वारा किये गये अच्छे कर्म ही उसके

साथ रहते हैं। मनुष्य यदि इस जीवन के बाद कुछ चाहता है तो उसे इसका प्रयास इस संसार में अपने कर्मों द्वारा ही करना पड़ता है। यही बात एक गीत में कही गई है।

परवत चढ़ते प्यास लगै, तो झारी ले लो साथ।[8]

पहाड़ पर चढ़ते समय प्यास लगे तो झारी अपने पास रहने से ही प्यास बुझाई जा सकती है। इसी तरह स्वर्ग के रास्ते की कठिनाई भी अच्छे कर्मो द्वारा ही दूर की जा सकती है। मनुष्य एवं उसके द्वारा किये गये कर्मों का सम्बन्ध ही सच्चा है, इसके अतिरिक्त सब संबंध झूठे हैं। जाम्भोजी ने भी अपने एक सबद में कहा है कि धर्मराज के यहां मनुष्य के माता-पिता आदि कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल अच्छे कर्म ही सहायक होते हैं।

उत माई पीव न कोइय न बोलै
सुकरत साथि सखाई चालै।[9]

मृत्यु के बाद तो निकट से निकट का संबंधी भी मृतक का तुरन्त अन्तिम संस्कार करके मुक्त होना चाहता है। एक गीत में यही भाव व्यक्त हुए हैं।

बेटा नै माता बहुत प्यारी, वै भी कहवै जल्दी-जल्दी।[10]

सम्पूर्ण गीत में कर्म का महत्त्व एवं सांसारिक संबंधों की निसारता अभिव्यक्त हुई है जो कि जाम्भोजी की शिक्षा एवं सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुरूप है।

बिश्नोई समाज के रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास एवं परम्पराओं आदि के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह समाज हिन्दू धर्म से अलग नहीं है। हिन्दू से अभिन्न रहकर भी यह अपना अलग वैशिष्ट्य बनाये हुए हैं। बिश्नोई समाज में प्रचलित लोकगीतों के आधार पर भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक ही गीत में जहां जाम्भोजी का वर्णन है, वहीं राम का वर्णन है। राम और कृष्ण बिश्नोईयों को भी उतने ही प्रिय है, जितने अन्य हिन्दुओं को। इसी कारण बिश्नोई सम्प्रदाय के गीतों में कहीं राधा का वर्णन है तो कहीं गोविन्द गिरधारी का।

काना गऊ रे चरावण ना जाई, तनै मारै ली गिरवर गाय।
गोविन्द गिरधारी।।[11]

-0-0-0-

मुरली बजावै भोळा कान्ह जी ओ रामा, राणी रुक्मण रो भरतार।
मुरली बाजै ओ राम।।[12]

विश्नोई सम्प्रदाय में अमावस्या का बहुत महत्त्व है। इस दिन को बहुत पवित्र माना जाता है। सम्प्रदय के उनतीस नियमों में से एक नियम "अमावस्या व्रत राखणो" है। इसी कारण सम्प्रदाय में लोग अमावस्या का व्रत रखते हैं और इस दिन दैनिक जीवन के कई कार्य नहीं करते। विशेषकर ऐसे कार्य जिनसे मूक पशुओं को कष्ट पहुँचता हो और किसी जीव की हिंसा होती हो। स्त्रियां भी इस दिन व्रत रखती हैं एवं भजन गाती हैं। जम्भवाणी में भी 'सोम अमावस आदितवारी, कांय काटी वंणरायो।' कहकर अमावस्या के महत्त्व को प्रकट किया गया है। एक विश्नोई लोकगीतों में भी अमावस्या का महत्त्व अभिव्यक्त हुआ है। गीत संवादात्मक है, जिसमें राधा एवं सुए (तोता) का संवाद है। गीत के प्रारम्भ में सुआ राधा को रास्ते में खड़ी देखकर पूछता है कि वह किसकी प्रतिक्षा कर रही है? इस प्रश्न के उत्तर में राधा कहती है कि कृष्ण वन में गये हुए हैं और मैं उन्हीं की प्रतिक्षा कर रही हूं। सुआ कहता है कि आपकी कृष्ण से भेंट अमावस्या के दिन अवश्य हो जायेगी, उससे पहले नहीं। इसके लिए सुआ राधा को सलाहा देता है कि

राधा ए ग्यारस राखो अनबोल, बारस गा खोलो पालणा।
राधा ए तेरस गी राखो अडीक, चौदस गा किरसन आयसी।।[13]

चौदहस के दिन ही अमावस्या प्रारम्भ हो जाती है और इसी पवित्र दिन को कृष्ण से भेंट होने की बात सुआ कहता है। सुए की इस बात से राधा बहुत प्रसन्न होती है और कहती है।

सुआ रे सौने गी चोंच मंढ़ाऊं, रुपैगी तेरी पांखड़ी।
सुआ रे मोतीड़ा गी चूण चुगाय, गंगाजल पाणी पायस्यू
सुआ रे सोनै गो पिंजड़ो घड़ाय, रेसम गी डोरी घालस्यू
सुआ रे हिड़दै में राखूं ली दिन-रात, सहेल्या में सुओ गायस्यूं।[14]

अर्थात् मैं तेरी चोंच सोने की एवं पंख चान्दी के बनवा दूंगी। मोतियों की चूण खिलाऊंगी तथा गंगाजल पिलाऊंगी। तुम्हारे रहने के लिए सोने का पिंजरा बनाऊंगी तथा तुम्हें रात-दिन अपने हृदय में रखूंगी और सहेलियों में तुम्हारी प्रशंसा गाऊंगी। इस तरह सुआ राधा के मन की इच्छा के पूर्ण होने का दिन बतलाता है। इसीलिए यह गीत "सुआ" नाम से प्रसिद्ध है। एक ओर यह गीत विश्नोई सम्प्रदाय में अमावस्या के महत्त्व को प्रकट करता है, दूसरी ओर इसमें आये संवादों के कारण इसका कलात्मक महत्त्व भी है। इसी कारण डॉ. कमला रत्नम् इसे साहित्यिक अभिव्यक्ति की श्रेष्ठ उपलब्धि मानती है।[15]

2. हनुमान जी से सम्बन्धित गीत

शहरों की अपेक्षा गांवों में धर्म के प्रति गहरी आस्था रही है। इसी कारण ग्रामीण जनता अपने कल्याण हेतु असंख्य देवी-देवताओं की पूजा करती रही है और स्त्रियां विभिन्न उत्सवों पर उनकी प्रशंसा में गीत गाती हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में धार्मिक दृष्टि से जाम्भोजी का ही सर्वाधिक महत्त्व है, पर हिन्दू धर्म से जुड़े रहने के कारण अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा की जाती है। सम्प्रदाय में जाम्भोजी के बाद हनुमान जी का ही महत्त्व है। परिवार में जब भी कोई संकट आता है तो जाम्भोजी के साथ-साथ हुनमान जी को भी स्मरण किया जाता है। संकट निवारण एवं परिवार की मंगल कामना हेतु पूर्णमासी की रात्रि को हनुमान जी से संबंधित गीत गाये जाते हैं, जिसे "रात जगाणा" या हनुमान जी का "रातीजगा" कहते हैं। सन्ध्या को "परसादी" बनाकर बच्चों को खिलाई जाती है और एक लाल रंग की ध्वजा घर के ऊपर लगाई जाती है। रात्रि में स्त्रियां एकत्रित होकर हनुमान जी से संबंधित भजन गाती हैं और अपने हाथों में मेहन्दी लगाती हैं। यह रातीजगा आधीरात के बाद ही पूर्ण होता है, पर कई बार अधिक स्त्रियां होने पर प्रातः काल तक भी चलता रहता है। जिस प्रकार जाम्भोजी का "जम्मा" पांच साखियों से पूर्ण माना जाता है, उसी प्रकार हनुमान जी का रातीजगा भी पांच भजनों से पूर्ण हो जाता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में हनुमान जी के रातीजगे में जैसे पांच भजन गाना अनिवार्य है, उसी प्रकार प्रारम्भ में एक विशेष भजन गाने की परम्परा है। यह भजन आकार की दृष्टि से अन्य भजनों से बड़ा भी है। शेष भजनों में न तो कोई क्रम है और न ही किसी की प्रतिबद्धता है, पर ये सभी भजन हनुमान जी से ही संबंधित होते हैं। रातीजगे के प्रारम्भ में जो गीत गाया जाता है, उसमें एक ओर हनुमान जी के "देवरे" का निर्माण, उसकी सजावट एवं उसकी लागत का वर्णन है तो दूसरी ओर मन्दिर में आने वाले "जातरियों" उनकी इच्छाओं एवं उनके द्वारा चढ़ाये जाने वाले प्रसाद का वर्णन है।

हां ओ पूत जे मांगै जातण बांजड़ी।
हां ओ अन्न-धन मांगे धीनड़ियां गी माय, जीसोड़ो नगारो।

हां ओ रिपीया तो चाढ़ै बव्ळाकारी गै सुहागण बांजड़ी।
हां ओ छ्तर चढ़ावै धीनड़िया गी माय, जीसोड़ो....

(संकलित)

बिश्नोई सम्प्रदाय में प्रचलित हनुमान जी से सम्बन्धित गीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है।

1. हनुमानजी के जीवन से सम्बन्धित गीत
2. हनुमानजी की उपासना से सम्बन्धित गीत

प्रथम प्रकार के गीतों में हनुमान जी के माता-पिता का परिचय एवं उनके नामकरण का वर्णन है।

कूण सुत मात, कूण सुत पिता, हरि-हरि कण थारो नाम धरयो हड़वन्ता
थे तो बाळी ओ हड़मान बिड़द बंका।।
अंजनीसुत मात, पवन सुत पिता, हरि-हरि गंगानंद नाम धरायो हड़वन्ता।
थे तो बाळी ओ हड़मान बिड़द बंका।।[16]

हनुमान जी से संबंधि गीतों में अधिकतर गीतों में उनके द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन हुआ है। इन कार्यों में सीता की खोज करना, लंका जलाना और लक्ष्मण के प्राण बचाना प्रमुख हैं। एक गीत में हुनमान जी द्वारा सीता को "मूंदड़ा" देना, वाटिका में फलों को तोड़ना एवं लंका में आग लगाने का वर्णन किया गया है।

सीता हींड रही हींड़ै में, जद छिटकायो मूंदड़ो।

गीत का अधिकांश भाग संवादात्मक है। प्रारम्भ में यह संवाद सीता एवं हनुमान में है -

सीता मोत कल्पना करके, कंठ लगायो मूंदड़ो
तनै जाणु नहीं रे बीर, मनै कुंकर आवै धीर
माता रामचन्दर जी गो पायक, सीता लक्ष्मण जी गो पायक।

(संकलित)

गीत की समाप्ति हनुमान जी एवं रावण के दरबारियों के संवाद से होती है।

मैं मेरी हाथे मोत बताऊ, सारी लंका गी रुई मंगाओ,
मेरी पूंछ गै लिपटाओ।

(संकलित)

बनवास की अवधि में राम के जीवन में दो बड़े संकट आते हैं - एक सीताहरण का एवं दूसरा लक्ष्मण के मूर्छित होने का। इन दोनों संकटों का निवारण हनुमान जी द्वारा होता है। इसी से हनुमान जी "संकट मोचन" के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में भी हनुमान जी की पूजा इसी रूप में की जाती है। एक गीत में हनुमान जी से यह प्रार्थना भी की गई है कि आपने जिस तरह

बीमारियों में सम्भवत: चेचक ही ऐसी है, जो देवी या देवता के रूप में पूजी जाती है, इसका कारण सम्भवत: इसकी भयंकरता ही है।"[21]

ग्रामीण जनता के विश्वास के अनुसार चेचक शीतला देवी के प्रकोप से होती है और उसकी प्रसन्ता से वह ठीक हो जाती है। यही धारणा बिश्नोई समाज में रही है। अन्य जातियों द्वारा चेचक की देवी शीतला की पूजा के प्रभाव से बिश्नोई सम्प्रदाय भी प्रभावित हुआ है। दूसरे लोगों के अनुकरण पर इस सम्प्रदाय में भी शीतला की पूजा प्रारम्भ हो गई, जो आज तक चल रही है। बिश्नोई सम्प्रदाय में शीतला ही "सेडल माँ" के नाम से प्रसिद्ध है। चैत्र कृष्णा अष्टमी को बिश्नोइयों के यहां भी "सैडल माँ" की पूजा की जाती है। इस दिन बिश्नोइयों के यहां अग्नि नही जलाई जाती और उस दिन रात के बनाये हुए चावल या लापसी का ही बासी भोजन किया जाता है। इसी को "बासीड़ा" कहते हैं। यही भोजन "सेडल माँ" को भेंट किया जाता है। घर के सभी छोटे बच्चे लेट-लेट कर देवी के बने प्रतीक के आगे धोक लगाते हैं। चेचक की देवी का नाम शीतलता से संबंधित है। अत: इसे कोई गर्म वस्तु भेंट नहीं चढ़ाई जाती। इसकी पूजा के माध्यम से यह आशा की जाती है कि माँ की दृष्टि उन पर सदैव ठंडी रहेगी और उन पर कभी भी चेचक का प्रकोप नहीं होगा।

चेचक के रोग का कोई इलाज न होने के कारण रोगी को देवी की दया पर छोड़ा जाता रहा है। "सेडल माँ" को प्रसन्न करने के लिए उसकी पूजा की जाती है और उसकी प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं। सेडल माँ का वाहन गधा माना जाता है। इसी कारण "शीतलाष्टमी" को जब "सेडल माँ" की पूजा की जाती है तो बच्चों को "पूणियां" [22] बनाकर देवी के आगे धोक दिलाई जाती है। एक गीत में भी सेडल माँ के इस वाहन की ओर संकेत किया गया है।

सेडल आयी म्हारे देस में मां, अड़सट गधिया पिलाण मोरी माय
नवलख गधिया पिलाण।[23]

"सेडल माँ" अपने प्रकोप से परिवार के किसी भी सदस्य की हानि न करे और उसकी दया से परिवार में प्रसन्नता रहे, तो भक्त माँ का मन्दिर बनाने के लिए तैयार है।

और चिणयस्यां गढ़ मोकळा ए माय,
बधियो बधियो जातियां रो परिवार।[24]

एक अन्य गीत में भी "सेडल माँ" से प्रार्थना की जाती है कि

वह परिवार के सभी सदस्यों और पशुओं पर ठंडी दृष्टि रखे।

टाबरिया नै टंडा झोला देयी ए नोखै री माय।
ऊंटा-सांड्यां नै टंडा झोला देयी ए नोखै री माय।[25]

बच्चों के साथ-साथ पशुओं की कुशलता के लिए प्रार्थना करना बिश्नोई सम्प्रदाय की "जीव दया पालणी" भावना का द्योतक है। इसके साथ ही पशुधन कृषकों की समृद्धि का आधार रहा है तथा कृषि बिश्नोई सम्प्रदाय का मुख्य व्यवसाय रहा है। इस कारण भी अपनी समृद्धि हेतु पशुधन की कुशलता के लिए प्रार्थना की गई है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में "सेडल माँ" से संबंधित गीत संख्या में कम ही है। "सेडल माँ" के अधिकतर गीतों में चेचक से बालकों की रक्षा एवं परिवार में सुख-शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ ही पायी जाती हैं। जिस घर में चेचक निकल आती थी, उस घर में सब्जी न छोंकना, बाहर से आनेवाले व्यक्ति द्वारा गो-मूत्र की बूंद अपने पैरों पर डालना, भड़कीले कपड़े न पहनना आदि कई नियमों का पालन किया जाता रहा है। इन नियमों के पालन करने के पीछे यद्यपि कुछ वैज्ञानिक कारण भी रहे है, पर जन साधारण इन नियमों का पालन देवी को प्रसन्न करने के लिए ही करता रहा है।

वर्तमान में हमारे देश में चेचक जैसी भयंकर बीमारी समाप्त हो गई है। अब इस बीमारी पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया है। चेचक की बीमारी के समाप्त होने के बाद भी "सेडल माँ" के प्रति लोगों की कुछ आस्था बनी हुई है। आज भी लोग वर्ष में एक बार "सेडल माँ" की पूजा करते हैं।चेचक की बीमारी पर इस तरह का नियंत्रण रहा तो हो सकता है कि अन्य जातियों के साथ बिश्नोई भी "सेडल माँ" की पूजा करना बन्द कर दे और उससे संबंधित लोकगीत भी स्त्रियां भूल जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं है।

बिश्नोई सम्प्रदाय के देवी-देवताओं एवं मेलों से सम्बन्धित लोकगीतों के द्वारा सम्प्रदाय का धार्मिक स्वरूप प्रकट हुआ है। धर्म के प्रति अडिग आस्था, आडम्बरहीनता, धार्मिक कृत्य, जीवदया की भावना, उत्तम कर्मो को करने एवं विष्णु स्मरण के प्रति विश्वास, जाम्भोजी को ही विष्णु मानना एवं उनसे सम्बन्धित स्थानों के प्रति श्रद्धा एवं अन्य देवी-देवताओं के प्रति भी आस्था अभिव्यक्त हुई है। ये सभी लोकगीत बिश्नोई सम्प्रदाय के अपने वैशिष्ट्य को सुरक्षित रखने में सहायक हुए हैं।



सन्दर्भ

1. लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या-श्री कृष्णदास, पृ. 37
2. बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 111
3 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 111
4 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 112
5. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 112
6 वील्होजी कृत उमाहो -
7. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 113
8. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 113
9. जाम्भोजी की सबदवाणी-डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. 67
10 बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 115
11. बिश्नोई लोकगीत " पृ 114
12. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 110
13. बिश्नोई लोकगीत " पृ 111
14. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 111
15. बिश्नोई लोकगीत " (भूमिका), पृ. -ट
16 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 119
17 बिश्नोई लोकगीत " पृ 121
18 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 119
19. बिश्नोई लोकगीत " पृ 121
20 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 122
21 लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन-डॉ. कुलदीप, पृ. 159
22. गधे का छोटा बच्चा
23. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 123
24. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 123-124
25. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 124

त्यौहार के गीत

मानव के सर्वांगीण विकास के लिए भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी आवश्यक है। वेद, पुराण एवं उपनिषद् आदि ग्रन्थ मानव की आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं, परन्तु ये ग्रन्थ भाषा एवं विषय की दृष्टि से इतने गूढ़ हैं कि जन साधारण द्वारा इन्हें समझना कठिन है। जन साधारण की इसी समस्या का समाधान त्यौहारों द्वारा होता है। प्रत्येक त्यौहार किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक पक्ष से जुड़ा हुआ है। इसी कारण त्यौहार जन साधारण की आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते रहे हैं।

मनुष्य के लिए जितना कर्म आवश्यक है, उतना ही विश्राम एवं मनोरंजन। विश्राम एवं मनोरंजन जब कर्म के साथ-साथ चलते हैं, तब कर्म की गति रुकती नहीं, अपितु निरन्तर बढ़ती रहती है। मनुष्य स्वभाव से ही मनोरंजन प्रिय प्राणी है और मनुष्य की इसी मनोरंजन प्रियता ने त्यौहार के जन्म में सहयोग दिया है। त्यौहार के कारण समाज की एकरसता एवं थकान समाप्त हो जाती है। काम करते-करते मानव जीवन शिथिल हो जाता है। त्यौहार के कारण मानव की यह शिथिलता दूर हो जाती है और वह दुगने वेग तथा नये जोश से काम प्रारम्भ कर देता है। त्यौहार से ही मनुष्य दैनिक जीवन के दुःखों से मुक्ति पा लेता है। बिश्नोई सम्प्रदाय में मृत्यु का शोक भी त्यौहार के साथ ही प्रायः समाप्त मान लिया जाता रहा है।

सामाजिक दृष्टि से भी त्यौहार बहुत महत्त्वपूर्ण है। त्यौहार हमारे सामाजिक जीवन के दर्पण हैं। इनसे आपसी ईर्ष्या-द्वेष समाप्त हो जाता है और प्रेम में वृद्धि हो जाती है। मिलन की भवना ही त्यौहार की आत्मा होती है। इसी भावना के कारण समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग के समीप आता रहता है। प्रत्येक त्यौहार पर कुछ न कुछ धार्मिक अनुष्ठान होते रहते हैं। धर्म से जुड़े रहने के कारण ही समाज की आस्था इनमें अधिक होती है। मानव विकास में त्यौहारों का योगदान

बराबर रहा है। यही कारण है कि जो समाज जितना अधिक सभ्य एवं उन्नतिशील है, उसमें उतने ही अधिक त्यौहार मनाये जाते हैं। व्रत और त्यौहार हमारी संस्कृति की आधार शिला है।

होली, गंवर, आखातीज, सावण की तीज, गोगा एवं दीपावली आदि बिश्नोई सम्प्रदाय के मुख्य त्यौहार है। शहरी सभ्यता के विकास के कारण आज शहरों में त्यौहारों का महत्त्व घटता जा रहा है। परन्तु ग्रामीण जीवन में आज भी त्यौहारों का महत्त्व बना हुआ है। अधिकांश बिश्नोई गांवों में ही रहते हैं। अतः बिश्नोई समाज में आज भी त्यौहारों का बहुत महत्त्व है। वैसे बिश्नोई सम्प्रदाय कई त्यौहारों को मनाता है पर गीत, होली, गंवर एवं सावन की तीज पर ही गाये जाते हैं। इन त्यौहारों का जो सांस्कृतिक महत्त्व है, वह इन लोकगीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

1. होली के गीत

होली की पृष्ठभूमि में एक पौराणिक कथा है। इस कथा के अनुसार राजा हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र प्रहलाद को भक्ति के रास्ते से हटाने के अनेक प्रयास किये पर हिरण्यकश्यप को सफलता नही मिली। अन्त में हिरण्यकश्यप ने अपनी बहिन होलिका के द्वारा प्रहलाद को जलाने की योजना बनायी, पर यह योजना भी सफल नहीं हुई। इसमें होलिका जल गई और भक्त प्रहलाद सुरक्षित रह गये। यह पौराणिक कथा भक्ति की विजय एवं पाप के विनाश की ओर संकेत करती है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज में पाप, पशुता एवं दानवता की पराजय एवं पुण्य, मानवता एवं देवत्व की विजय के रूप में इस त्यौहार को मनाया जाता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय, हिन्दू समाज का एक अंग होते हुए भी अपना अलग वैशिष्ट्य रखता है। बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जाम्भोजी ने स्वयं के संसार में आने का कारण "सबदवाणी" में बताया है। "सबदवाणी" के अनुसार सत्ययुग में भगवान ने भक्त प्रहलाद के उद्धार हेतु नृसिंह के रूप में अवतार लिया था। उस समय भक्त प्रहलाद के तेतीस करोड़ अनुयायी थे, जिनमें से पांच करोड़ की हत्या हिरण्यकश्यप ने कर दी थी। हिरण्यकश्यप की मृत्यु के बाद भक्त प्रहलाद ने भगवान से इन तेतीस करोड़ अनुयायियों के उद्धार का वचन मांगा था। भगवान ने चारों युगों में इनके उद्धार का वचन प्रहलाद को दिया था। इसी वचन के अनुसार पांच करोड़ प्रहलाद के साथ (सत्य युग में) सात करोड़ त्रेता में राजा हरिश्चन्द्र के साथ एवं नौ करोड़ जीवों का उद्धार द्वापर में राजा युधिष्ठर के साथ किया गया। शेष बारह करोड़ अनुयायियों के उद्धार के लिए कलियुग में जाम्भोजी का आना हुआ* और साथ ही उन्होंने यहां बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन भी किया।

इस तरह जाम्भोजी के इस संसार में आने में प्रहलाद को दिया हुआ वचन ही प्रमुख है। कलियुग में जाम्भोजी ने जिन बारह कोटि जीवो का उद्धार किया, वे प्रहलाद पंथी ही थे और सभी विष्णु के उपासक थे। विष्णु की उपासना के आधार पर ही बिश्नोई सम्प्रदाय का नामकरण हुआ है। इसी आधार पर बिश्नोई अपने आपको "प्रहलाद पंथी" भी मानते हैं।

प्रहलाद पंथी होने के कारण होली बिश्नोइयों के लिए शोक का त्यौहार है। प्रहलाद भक्त को होलिका द्वारा जलाने की आशंका से बिश्नोई सन्ध्या को किसी प्रकार का उत्सव नहीं मनाते। इसीलिए सूर्यास्त से पूर्व ही खीचड़ा एवं 'पळेवड़ी' खाकर शोक मनाते हैं। इसी कारण आज भी अनेक लोग होली-दहन के दर्शन नहीं करते। यद्यपि बिश्नोइयों के यहां भी होली "मंगलाई" जाती है परन्तु उसमें जो प्रहलाद का प्रतीक होता है, उसे गांव का कोई अविवाहित युवक आग लगते ही निकाल लेता है और किसी समीप के तालाब में डाल देता है। प्रातःकाल प्रहलाद के जीवित होने की सूचना पाकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं, परन्तु रंग नहीं खेलते। हवन करते हैं, कलश की स्थापना की जाती है और पाहळ किया जाता है, जिसे सभी ग्रहण करते हैं। होली के पाहळ का विशेष महत्त्व है। आज भी बिश्नोइयों के गांवों में होली का पाहळ होता है और इसे ग्रहण करने के बाद ही लोग भोजन करते हैं।

बिश्नोई सम्प्रदाय में होली से संबंधित अनेक गीत हैं, जो होली से दस-पन्द्रह दिन पूर्व से गाये जाने प्रारम्भ होते हैं और होली की रात तक गाये जाते हैं। होली से कुछ दिन पूर्व ही लड़कियां गोबर के "ढ़ोकळिया" बनाना प्रारम्भ कर देती हैं। होली की सन्ध्या को लड़कियां गीत गाते हुए इन्हीं "ढ़ोकळिया" की मालाओं को होली में डाल कर आती हैं।

लड़के दस-पन्द्रह दिन पूर्व "दड़ी"[1] खेलना प्रारम्भ कर देते हैं। इस खेल में दड़ी एवं "गेडिया"[2] ही मुख्य उपकरण होते हैं। "दड़ी" खेलने का वर्णन होली के कुछ गीतों में हुआ है।

ओ कुण खेलै ए होळी गै बाग, झिरमटियो ले?
रामू खेलै ए होली गै बाग, झिरमटियो ले।।
बीरे गै हाथ म्ह सोनै गो गेडियो, झिरमटियो ले।[3]

आगे इसी गीत में खेलने वाले की वेश-भूषा का वर्णन किया गया है।

बीरे गै पेहरन केसरियो बागो, झिरमटियो ले।

बीरे गै कान्धै ऊपर रावळ काम्बळ, झिरमटियो ले।[4]

एक अन्य गीत में खेलने वाले के विशेष खेल को देखकर उसके वंश के बारे में अनुमान लगाया जाता है।

लोग कह पोतो राव रो, पोतो ए कालू जी रो।
लोग कह बेटो राव रो, बेटो ए लालू जी रो।।[5]

इसी प्रकार खेलने वाले के अन्य संबंधियों के बारे में भी गीत में वर्णन किया गया है।

होली की सभी को प्रतीक्षा रहती है। लड़के दड़ी खेलने के लिए होली की प्रतीक्षा करते हैं और लड़कियां अपने पीहर जाने तथा गीत गाने के लिए होली की प्रतीक्षा करती हैं। होली की यही प्रतीक्षा गीत की इस पंक्ति में अभिव्यक्त हुई है।

माह गयो फागण आयो, कद आवै ए होळी।[6]

होली आने पर लड़के तो "दड़ी" खेलना प्रारम्भ कर देते हैं तथा अविवाहित लड़कियां गीत गाना प्रारम्भ कर देती हैं। विवाहित लड़कियां पीहर में आने के लिए ससुराल में बैठी हुई भाई का इन्तजार करती रहती हैं। बिश्नोइयों के यहां सभी त्यौहारों पर नहीं तो कम-से-कम होली एवं दिवाली पर तो लड़की को पीहर में लाते ही हैं। इसीलिए होली के समय एक बहिन अपने भाई की प्रतीक्षा करती है और अपने मकान पर चढ़कर देखती है कि उसका भ्राई आ रहा है या नहीं-

डागळिय चढ़ जाऊँ ए, जे कोई दीसै आवन्तो,
जावन्तड़ो बटाऊ, आवन्तड़ो मेरो बीर।[7]

लड़की का सोचना ठीक ही है, क्योंकि लड़की के सुसराल से जाने वाला तो लड़की का भाई हो ही नहीं सकता, परन्तु ससुराल की ओर आने वाला उसका भाई हो सकता है। इस प्रकार से जब बड़ी तीव्रता से भाई की प्रतीक्षा की जाती है और वास्तव में ही जब भाई आ ही जाता है तो बहिन की प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। इसीलिए वह अपने भाई के सत्कार में भी कोई कमी नहीं रहने देती और उससे पूछने लगती है :-

बीरा थक्यो है तो बेसी रे, ठंडी छींया खजूर गी।
बीरा तीस्यो है तो पीवी रे, कोरो माट पुम्हार गो।
बीरा भूखो है तो जीमी रे, चावळ सेदपु उजळा।
बीरा लूखा है तो मांगी रे, घी बरताऊ टोकणा।[8]

लोकगीत कभी एकांगी नहीं चलता। सामाजिकता का चित्रण उसमें अवश्य रहता है। बहिन ने भाई की हर प्रकार से सेवा की है, पर उसे हर पल अपनी सास एवं ननद का भी डर है। उसे इस बात की आशंका है कि यदि उसकी सास एवं ननद आ गई तो उसके भाई की ऐसी सेवा नहीं हो पायेगी। इसीलिए वह अपने भाई से कहती है :-

बीरा चट-चट जीमी रे, सासु नणद लड़ोकड़ी।
वीरा मनै दयली गाळ रे, तनै दयली ओळबो।।[9]

भाई बहिन का प्रेम अटूट है। बहिन अकेले में अपने भाई को चाहे कुछ भी कह दे पर दूसरों के सामने वह कभी भी अपने भाई की बुराई नहीं करेगी और न सुनेगी। बाहर तो वह उसकी प्रशंसा ही करेगी। बहुत दिनों के बाद जब उसका भाई आया है तो बहिन को यह आशा थी कि उसका भाई उसके लिए कुछ न कुछ अवश्य ही लाया होगा। भाई को खाली हाथ देखकर बहिन को बहुत ही निराशा होती है। इसी बात को वह सीधे न कहकर बड़े ही चातुर्य पूर्ण ढ़ंग से कहती है।

बीरा लाल पड़ौसण पूछै रे, थारो बीरो कांई-कांई लायो?
बाई मेहन्दी गो कोथळियो रे, मांय कसुम्बा कांजळी।
बाई पहरण नै पोटळी रे,ऊपर बोरंग चूंदड़ी।
अतरी करी बीरा सोभा रे, लायो न टकै गी कांजळी।।[10]

बहिन स्पष्ट कह देती है कि मैंने तो बाहर पड़ौस में तुम्हारी बहुत ही प्रशंसा की है, यह दूसरी बात है कि तुम मेरे लिए "दो टके की कांजली" भी नहीं लाये।

जीवन की सच्चई ही लोकगीतों की आत्मा है। इसी सच्चाई को अभिव्यक्त करना ही लोकगीतों का मुख्य ध्येय रहता है और इसी कारण लोकगीत जन साधारण को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय के इस लोकगीत में जीवन का यथार्थ रूप अपने सर्वांगीण परिवेश के साथ अभिव्यक्त हुआ है। इस तरह होली के इस एक ही गीत में बहिन की भाई के लिए प्रतीक्षा, बहिन द्वारा भाई का सत्कार, सास एवं ननद का आतंक, बहिन द्वारा भाई की झूठी प्रशंसा एवं बहिन का उलाहना आदि जीवन की सच्चाई अपने विविध आयामों के साथ अभिव्यक्त हुई है। जीवन के इन आयामों के साथ-साथ इस गीत में विश्नोई समाज में होली पर भाई द्वारा बहिन को लाने की परम्परा का उल्लेख भी हुआ है। इससे स्पष्ट है कि लोकगीतों में जाति विशेष का इतिहास झांकता है। इसी कारण

लोकगीत सही अर्थों में समाज का दर्पण है।

होली के त्यौहार पर प्रायः सभी लड़कियां अपने पीहर में आ जाती है। रात्रि में गांव के बीच किसी चौकी पर बैठकर होली से सम्बन्धित गीत गाती रहती हैं और कई दिनों के बाद मिलने के कारण आपस में बाते भी करती रहती हैं। बहुत दिनों के बाद मिलने वाली सहेलियों के लिए यह आवश्यक भी है, कि वे अपना सुख-दुःख भी एक दूसरे को सुनावें। वार्तो और गीतों के कारण उन्हें समय का भी पता नहीं चलता, रात्रि ढ़ल जाती है, फिर भी वे वहीं बैठी रहती हैं। अचानक जब किसी लड़की को समय का ध्यान आता है तो वह घर चलने की बात कह उठती है और साथ में यह गीत सुनाई देने लगता है।

चांद चढ्यो गिगनार कीरत्यां ढ्ळ रही है।
उठ बाई रामी घरै पधार,
बाबो जी दयला गाळ, माऊ जी बरजै ला जी बरजै ला।
मत ना द्यो बाई नै गाळ, बाई म्हारी चिड़कौली जी, चिड़कोली जी।
आज उड़ै परभात, परसों उड़ै जासी जी, उड़ै जासी।[11]

इतनी अधिक रात्रि के व्यतीत होने पर भी घरवाले लड़कियों को कुछ नहीं कहते, क्योंकि वे जानते है कि ये सभी लड़कियां दो-चार दिनों के बाद अपनी ससुराल चली जायेगी। बिश्नोइयों के होली-गीतों में रात्रि के समय सबसे अन्त में सदैव यही गीत गाया जाता है। इस गीत को सुनकर घरवाले भी यह अनुमान लगा लेते हैं कि अब लड़कियां आज गीत समाप्त करके घर आने वाली हैं।

बिश्नोइयों के यहां होली के गीत रात्रि में देर तक गाये जाते हैं। छोटी लड़कियां तो एक-दो गीत सुनकर घर आकर सो जाती है। बड़े-बड़े गीत छोटी लड़कियों को याद भी नहीं होते, फिर भी वे दिन में दो-चार मिल कर किसी गीत की कोई पंक्ति गाती हुई सुनी जा सकती है। उनकी इसी उत्सुकता को देखकर बड़ी बहिनें उन्हें एक छोटा सा गीत सीखा देती हैं। इस गीत को वे दिन में या सन्ध्या को गाती रहती हैं, इससे वे अपने आप को बड़ी लड़कियों के समान अनुभव करने लगती है। यह गीत "डिबोली" के नाम से प्रसिद्ध है।

डाई ए डिबोली, ओ नाळ कठै नै जाय, डाई ए डिबोली?
ओ नाळ नोखै नै जाय, डाई ए डिबोली।
सीता बाई गा राम-राम लाय, डाई ए डिबोली।
बहनोई गा मुजरा लाय, डाई ए डिबोली।[12]

गीत केवल इतना ही है पर लड़कियां अपनी-अपनी बहिनों के नाम लेकर गीत को बढ़ाती रहती हैं। सरलता की दृष्टि से बिश्नोई लोकगीतों में सबसे सरल इसी गीत को माना जाता है। इसलिए बिश्नोइयों के यहां जब कोई स्त्री किसी गीत को गाते-गाते भूल जाती है तो अन्य स्त्री झट से कह देती है "आवै तो कोनी डिबोली ही" अर्थात् डिबोली जैसा सरल गीत जिसको नहीं आता, वह बडे गीत कैसे गा सकती है?

बिश्नोई सम्प्रदाय के होली गीतों में लड़कों द्वारा "दड़ी" खेलने का वर्णन हुआ है, तो दूसरी ओर किसी भी गीत में रंग खेलने का चित्रण नहीं हुआ है। इसी से ये गीत बिश्नोई समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप को चित्रित करने में सफल हुए हैं। इसके साथ ही होली के अवसर पर बहिन द्वारा भाई की प्रतीक्षा करना और भाई द्वारा उसे पीहर लाना आदि भावों के चित्रण से भी इन गीतों का समाजगत वैशिष्ट्य है।

2. गंवर के गीत

गंवर का त्यौहार पूर्ण रूप से स्त्री जाति का त्यौहार है। इस समय शिव एवं पार्वती की ही पूजा की जाती है और उनसे संबंधित गीत गाये जाते हैं। इस त्यौहार के गीतों में शिव को ईसर के नाम से एवं पार्वती को गंवर के नाम से पुकारा जाता है। शिव-पार्वती की पूजा करने का मुख्य कारण यह है कि पार्वती ने कई जन्मों तक शिव को पति रूप में प्राप्त किया था। पार्वती अचल सौभाग्यवती मानी जाती है और शिव के जीवन में भी पार्वती के अतिरिक्त कोई स्त्री नहीं आई थी। इसीलिए भारतीय समाज में शिव-पार्वती की आदर्श दम्पत्ति के रूप में पूजा की जाती है। पार्वती को भी अच्छे पति के रूप में शिव की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या करनी पड़ी थी। इसी भावना के आधार पर यह त्यौहार मनाया जाता है। कुंवारी लड़कियां अच्छे वर की कामना करती हैं एवं विवाहित स्त्रियां अपने सुहाग की रक्षा के लिए इस त्यौहार को मनाती है।

बिश्नोई सम्प्रदाय में भी गंवर का त्यौहार मनाया जाता है। गंवर गणगौर का ही सरलीकरण रूप हैं - गौरी एवं उसका वर। शिव-पार्वती की पूजा के रूप में गणगौर का त्यौहार सभी हिन्दुओं द्वारा मनाया जाता है। बिश्नोई सम्प्रदाय भी हिन्दू धर्म का एक अंग है। इसीलिए बिश्नोई समाज में भी गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है, पर अपनी विशिष्टता के कारण बिश्नोई स्त्रियों द्वारा गंवर की पूजा अपने ही प्रकार से की जाती है। वैसे तो सभी स्त्रियां एवं युवतियां गंवर की पूजा करती हैं पर विवाहित स्त्री अपने जीवन में एक बार गंवर पूजा का विशेष आयोजन

करती है, जिसे "गंवर ऊजणा" कहते हैं। जो स्त्री "गंवर ऊजणा" चाहती है वह होली की राख मंगवाकर अपने घर के "पळीण्डे" में गेहूं या जौ बो देती है, जिसे "जंवरा" कहते हैं। कृषि प्रधान जाति होने के कारण विश्नोई समाज में नव वर्ष के प्रथम दिवस को इन "जंवरो" के माध्यम से फसल बोने की शुरुआत की जाती है। बाद में पूजा के माध्यम से इनकी नित्य सिंचाई होती है और इन्हें उपयोग हेतु तैयार करके फसल प्राप्ति के रूप में सफलता प्राप्त की जाती है। होली के एक या दो दिन बाद गांव की लड़कियां मिलकर "फुलड़ा"[13] लाती हैं। वे आते-जाते समय गीत गाती हैं। सभी लड़कियां फुलड़े लेकर "गंवर ऊजणे" वाली के घर पहुंच कर गंवर की पूजा करती हैं एवं गीत गाती हैं। रात्रि को भी गीत गाये जाते हैं और उसके बाद घूघरी या गुड़ बांटा जाता है। गंवर के दिन (चैत्र शुक्ला तृतीया) तक यही प्रक्रिया चलती रहती है। गंवर से पहली रात्रि को सभी गीत गाने वाली अपने हाथों में मेहंदी लगाती हैं, जिसे गंवर का "रातीजगा" कहते हैं। गंवर ऊजणे वाली गंवर से एक या दो दिन पहले सोलह "तिजणियां" निश्चित करती है, जिनमें आठ विवाहित स्त्रियां एवं आठ अविवाहित कन्याएं होती हैं। ये सभी व्रत रखती हैं और गंवर के दिन गंवर ऊजणे वाली के घर गंवर की पूजा करके वहीं सामूहिक भोजन करती हैं। इनके अतिरिक्त एक लड़के को भी गंवर पूजा में सम्मिलित किया जाता है, जिसे "साखिया" कहते हैं। इससे इस त्यौहार का सामाजिक महत्त्व भी प्रामाणित होता है। इन सभी को गंवर ऊजणेवाली की ओर से कुछ वस्त्र आदि दिये जाते हैं। सन्ध्यां के समय जब गंवर की सवारी निकलती है तो इन "जंवरों" को गंवर के ऊपर से वार-वार कर कुंए या तालाब में डाल दिया जाता है। जब किसी वर्ष किसी स्त्री द्वारा "गंवर ऊजणे" का आयोजन नहीं होता है, तो लड़कियां वैसे ही फुलड़े लाकर कभी किसी के यहां और कभी किसी के यहां गंवर की पूजा करती रहती है।

पार्वती को अपनी तपस्या से ही गुणवान पति की प्राप्ति हुई थी। इसी आधार पर कन्याएं पार्वती की पूजा करती हैं और वे चाहती हैं कि पार्वती उन्हें गुणवान पति-प्राप्त करवाने में सहायक हो। एक कुंवारी कन्या अपने पति में किन-किन गुणों को देखना चाहती है और कौन-कौन से अवगुण नहीं होने चाहिये, इन सबका वर्णन एक बिश्नोई लोकगीत में हुआ है।

चौकी बैठो चौधरी ए, भइयां म्ह सरदार
वो वर देई म्हारी गंवरल, हूं तनै पूजण आई।
फीडी पैरे मोचड़ी, चालै फीटक्ड़ती चाल।
ओ वर टाळी म्हारी गंवरल, हूं तनै पूजण आई।[14]

लड़कियां सुबह-सुबह एक साथ मिलकर फुलड़ा तोड़ने जाती हैं। जाते समय वे गीत भी गाती जाती हैं। प्रात: काल के गीतों में वे सर्व प्रथम ईसर का ही नाम लेना पसन्द करती है, क्योंकि ईसर की पूजा से ही उन्हें सुयोग्य वर की प्राप्ति हो सकती है।

आज सवेरे उठस्यां, म्हे लेस्यां ईसर जी रो नाम, कमोदर वांस देवा में
वहू ए गंवरल रो भतार, कमोदर वांस देवा में।[15]

इसके बाद के गीत में वे वाड़ी का वर्णन करती है। बाड़ी में मरवे की महक, भंवरों की गूंज एवं बालिकाओं की राग से एक लुभावना ही दृश्य उपस्थित हो जाता है। वे गाती जाती है :-

आ वाड़ी लाल किवाड़ी रे, सुरंग मरहवो मंहकै लो।
वाड़ी म्ह भंवरो मिणकै रे, सुरंग मरहवो महकै लो।[16]

बाड़ी में ईसर एंव गवंर के उपस्थित होने के कारण भंवरा भी फूलों पर न बैठकर उन पर ही बैठता है, इसीलिए गीत में आगे कहा गया है :-

ईसर जी री पाग विराजै रे, सुरंग मरहवो महकै लो।
वहू गंवरल रै घूंघट बसै रे, सुरंग मरहवो महकै लो।
वहू गंवरल फिर-घिर निरखै रे, सुरंग मरहवो महकै लो।[17]

एक अन्य गीत में ईसर को पूर्णत: मनुष्य के रूप में चित्रित किया है और उसे मरहवे के पान तोड़ते हुए बताया गया है।

ओ कुण गोरो तोड़ै ए मरहवै रा पान, ओ कुण वाड़ी रूंदसी।
ईसर गोरो तोड़ै ए मरहवै रा पान, कावूड़ी वाड़ी रूंदसी।[18]

ईसर के इस कार्य को देखकर बेचारी माळण ब्रह्मा जी के पास पहुंच कर प्रार्थना करती है :-

ऊभी मालण ए भोली करै ए पुकार, राजीड़ै ब्रह्मा जी री कोठड़ी।
थे ब्रह्मा जी ओ थारै कंवरा नै राखल्यो, फूल झाड़िया, वाड़ी रूंदली।[19]

मालण की शिकायत पर ब्रह्मा जी कहते हैं :-

गेली माळण भोळी असल गंवार, म्हारोड़ा ए कंवर लाडला।
गंवरल आडा ए बाई दिन चार, घोड़ला फेरण निसरया।[20]

मालण की शिकायत पर ब्रह्मा जी भी कुछ नहीं कर सकते और मालण को समझा कर वापस भेज देते हैं।

फुलड़ा लाने के बाद सभी लड़कियां गंवर ऊजणे वाली के घर या किसी भी एक लड़की के घर में गंवर की पूजा करती हैं। केवल अच्छे पति से

ही जीवन सुखमय नहीं बन सकता। इसके साथ-साथ पीहर एवं ससुराल पक्ष के सभी सम्बन्धी अच्छे हों, तभी जीवन सुखमय बन सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर गंवर की पूजा करते समय उसकी पूजा करने वाली अपनी मांग रखती जाती है। इससे इस गीत का सामाजिक महत्व भी अभिव्यक्त हुआ है।

पूजों ए पूजारी बाई के धन मांगें?
घड़ड़ो घमोड़ती माता मांगा, मेड़ी बैठो बाबो
काळे घोड़ै काको मांगा, काजळ वाळी काकी।।[21]

मांग रखने के साथ-साथ गीत विनोद युक्त भी हो गया है।

पूंछ पदडकै फूंफो मांगा, भांडा धोवण भुआ।
भैंस दूवण नैं मौसी मांगा, पाडा टालण मोसो।[22]

विश्नोई सम्प्रदाय के गंवर से सम्बन्धित सभी गीत अपने-अपने समय से संबंधित हैं। फुलड़ा लाते समय के गीत, घर वापस आते समय के गीत, पूजा करते समय के और रात्रि में गाये जाने वाले सभी गीत पृथक-पृथक हैं, परन्तु सभी तरह के गीतों में ईसर एवं गंवर का वर्णन अवश्य हुआ है। ईसर एवं गंवर के माध्यम से ही स्त्रियांअपने दाम्पत्य जीवन का संबंध जोड़ती हैं। इसीलिए ईसर एवं गंवर के वर्णन के बाद गीत गाने वाली स्त्रियां अपना एवं अपने पति का नाम लेती हैं।

इण रे हिंडोळे ईसर आयो, ले गंवरा दे नै साथ।
जीयो म्हे हिंडो मांड्यो।।
इण रे हिंडोले रामू आयो, ले कमला या (जाति) नै साथ।
जीयो म्हे हिंडो मांड्यो।।[23]

गंवर का त्यौहार पूर्ण रूप से प्रसन्नता का त्यौहार है। प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के लिए गीत ही सब कुछ नहीं होते। इस अवसर का खाना एवं पहनावा भी अन्य दिनों से भिन्न होता है। पहनावे के लिए चूंदड़ी भी विशेष प्रकार की होती है। वह चूंदड़ी अपने पति के द्वारा ही लायी होनी चाहिये, क्योंकि गौरी भी ईसर से इसी प्रकार की प्रार्थना करती है :-

हां जी चूंदड़ली रो गंवरा बाई नै कोड, हां जी ले द्यो
ब्रह्मा जी रा ईसर चूंदड़ी
हां जी फिर आयो रजवण देस-परदेस, कठै नै लादी चूंदड़ी।
हां जी लादी ए लादी हेमाजळ री पोळ, ओडो नी कानूड़ै
री बहण चूंदड़ी।[24]

ईसर जी भी बहुत तेज है। वे भी चूंदड़ी "हेमाजळ की पोल से लेकर आते हैं। हेमाजल से तात्पर्य हिमालय से है।

गंवर के दिन सन्ध्या को गंवर एवं ईसर की बनायी हुई मूर्तियों को कपड़े पहना कर उनकी सवारी निकाली जाती है। गांव के चौधरी के घर से ही गंवर निकलने का रिवाज अधिक रहा है। गंवर को सोने के अनेक आभूषण पहनाये जाते हैं और उनकी रखवाली के लिए पुरुष साथ जाते रहे हैं। गंवर एवं ईसर की इस शोभा यात्रा को देखने के लिए सभी लोग उत्सुक रहते थे। इसी से संबंधित एक गीत भी है :-

हां जी धूंधलीय धोरा सुं ए गंवरल निसरी
हां जी उतरी ए उतरी बड़ पीपळ रै हेठ
हालो ए मोरी सइयां गंवर भल जोयस्या।[25]

लेकिन आज केवल यह गीत ही रह गया। ईसर एवं गंवर की सवारी किसी भी बिश्नोई के घर से नहीं निकलती।

सन्ध्या को गंवर एवं ईसर की जो सवारी निकलती है, वह घूमती हुई तालाब या कुएं पर जाती रही है। सबसे अधिक भीड़ इसी स्थान पर होती थी। यहां गंवर एवं ईसर का विवाह कराया जाता था। यह विवाह नर-नारी के सुदृढ़ संबंधों का प्रतीक माना जाता रहा है। इसी समय ईसर जी से दान देने के लिए प्रार्थना की जाती है।

गंवरल डूबै जव तीरै, द्योनी ईसर जी दान, गंवर थारी निसरै।[26]

इस पंक्ति के बाद ईसर के स्थान पर उस व्यक्ति का नाम लिया जाता है, जिसके घर से गंवर की सवारी निकलती है। विवाह के बाद मुख्य कार्य लड़की को विदा करने का ही होता है। इसके साथ ही विवाह का कार्य सम्पूर्ण हो जाता है। गंवर को भी विवाह के उपरान्त विदा कर दिया जाता है। इस गीत में भी यही स्पष्ट होता है।

गंवर बुळाय घर चाल्या ओ राज झिरमिर फुलड़ा ले।
ईसर सूत्या छोड़या ओ राज, झिरमिर फुलड़ा ले।[27]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि एक समय था जब बिश्नोई गांवों में गंवर का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता था परन्तु आजकल इसका महत्व घटता जा रहा है। यद्यपि आज भी गंवर की पूजा की जाती है, गीत भी गाये जाते हैं, लेकिन पहले जैसा उत्साह नहीं रहा है, महज एक औपचारिकता सी रह गई है। इसका एक कारण तो यह है कि बिश्नोई अब बहुत अधिक संख्या में गांवों को

छोड़कर ढ़ाणियों में रहने लग गये हैं। शिक्षा का प्रचार-प्रसार एवं मनोरंजन के आधुनिक साधन भी इसका एक कारण है। तीसरा कारण, गंवर की सवारी निकलते समय के लड़ाई-झगड़े आदि। इन सब कारणों ने इस त्यौहार के महत्त्व को कम कर दिया है। परन्तु स्त्री जाति के लिए इसका महत्त्व आज भी बना हुआ है। वे यदि आज सामूहिक रूप से पूजा नहीं कर पाती तो एकान्त में ही गंवर की पूजा कर लेती है। वास्तव में यह त्यौहार स्त्री-पुरुष के प्रणय का द्योतक है। एक गुणवान पति से ही स्त्री का जीवन सुखमय बनता है और सुशील पत्नी से पुरुष का जीवन सफल होता है, इसी बात की याद यह त्यौहार दिलाता रहता है।

3. सावन की तीज के गीत

बादल एवं बिजली के साथ अठखेलिया करता हुआ सावन वर्षा के रूप में अपने हृदय की प्रसन्नता व्यक्त करता है। सावन की वर्षा से ग्रीष्म ऋतु की तपन समाप्त हो जाती है और धरती के सभी प्राणी आनंदित हो उठते हैं। कृपक-जीवन में नयी हलचल उत्पन्न हो जाती है। किसान में नयी आशा का संचार होने लगता है और उसका अधिकतर समय खेतों में व्यतीत होना प्रारम्भ हो जाता है। चारागाह पशुओं एवं ग्वालों से भर जाते हैं और पगडंडियां रंग बिरंगे वस्त्रों से सुशोभित "भतवारणों" से रंग-बिरंगी हो जाती हैं। सावन की रिमझिम में हाळी, पाळी एवं भतवारण आदि शरीर से भीग कर मन से भी भीगते रहते हैं। ठंडी-ठंडी हवा से प्राणी जगत् का मन डोलने लगता है और प्रकृति का सारा वातावरण सुहावना एवं सुखद हो जाता है। चारों ओर हरियाली दिखाई देने लगती है, मानो पृथ्वी ने अपना रस ही हरियाली के रूप में यहां वहां बिखेर दिया हो। पृथ्वी की हरियाली को देखकर कृपक का मन-मोर नाच उठता है। ऐसे ही वातावरण में तीज का त्यौहार आता है। त्यौहार से पन्द्रह-बीस दिन पूर्व ही अल्हड़ जवानियां झूलों पर अठखेलियां लेने लगती हैं। इन्हीं झूलों पर झूलती युवतियां मस्ती में गाती रहती हैं। दिन में तालाब या नदी किनारे झूलना एवं रात्रि में एक स्थान पर एकत्रित होकर गीत गाना, यही जीवन का क्रम बन जाता है। जीवन के किसी भी कोने में अवसाद का एक कण भी दिखाई नहीं देता। सावन की तीज पर सभी विवाहित लड़कियां अपने पीहर में आना चाहती हैं। बिश्नोइयों में लड़की त्यौहार पर अधिकतर अपने पीहर में ही रहती है। तीज के त्यौहार के लिए जिस उन्मुक्त वातावरण की आवश्यकता रहती है,वह लड़की को पीहर में ही प्राप्त हो सकता है।

सावन का महत्त्व उसमें होने वाली वर्षा के कारण ही है। इस महीने में आकाश में काली-काली घटाएं उमड़ती रहती है और ठहर-ठहर का वर्षा

होती रहती है। वर्षा से अतृप्त धरती तृप्त हो जाती है। छोटे-बड़े सभी तालाब भर जाते हैं। इन सब बातों का वर्णन इस गीत में हुआ है।

काळी कळावण उमटी, कोई उमट बरसयो मेह, मोरला।
सावण लेरो ले।
छ्ल नाड़ी, छल्या नाड़िया, कोई छल्या बाबाजी रा खेत, म्हारा मोरला
सावण लेरो ले।।[28]

वर्षा होते ही जीवन आनन्दमय हो जाता है। खुशियां लहरे लेने लगती है। बैलों के गले में पड़े हुए घुंघरू बज उठते हैं और 'हाळी' आनन्द के गीत गाते हुए खेतों की ओर रवाना हो जाते हैं। उनके पीछे ही "दखिणी चीर" ओढ़े हुए "भतवारण" दिखाई देती है। इसी कारण बिश्नोई सम्प्रदाय के सावन की तीज के गीतों में कहीं काली घटाओं का वर्णन है, तो कहीं वर्षा के जल से भरे हुए तालाबों का तो कहीं हल चलाते हुए हाळी और उसके लिए रोटी ले जाने वाली भतवारण का वर्णन है। सावन के महीने में होने वाली वर्षा कब बंद हो जाये और कब प्रारम्भ हो जाय, इसके संबंध में कुछ निश्चित नहीं रहता। इसी कारण सावन की झड़ी में कभी भतवारण का "चूरमा" भीगता है तो कभी उसका श्रृंगार एवं कभी "दखिणी चीर" भीग जाता है।

जावन्ती गो भिज्यो चूरमो, कोई घिरती गो सो सिंगार।[29]

सावण की तीज आ गई और इसी अवसर पर लड़की को ससुराल भेज दिया, इससे वह बहुत दु:खी है। उसकी सभी सखियां तो ससुराल से पीहर आ गई है और वे गीत गाती हुई झूले पर झूल रही है तथा उसे सुसराल में ही रहना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में वह मन मसोस कर रह जाती है। एक ओर उसे सावन की तीज के आनंद से वंचित होना पड़ रहा है तो दूसरी ओर उसे ससुराल में काम भी अधिक करना पड़ रहा है, इसका संकेत भी एक गीत में हुआ है।

आई-आई ए मां बडोड़ै सावण री तीज, मां मनै मेहली सासरै।
और सहेल्या ए मां खेलण-रमण न जाय, बाई नै दियो मां पिसणों।[30]

ससुराल में बहू से जहां एक ओर काम अधिक करवाते हैं वहां उसके साथ खाने-पीने में भी भेदभाव रखते हैं। इसकी शिकायत भी एक गीत में उसने अपनी मां से की है :-

औरां नै ए मां धबसे-धबसे खांड, बाई नै मां धबसो लूण गो।
औरां नै ए मां पळीय-पळीय दूध, बाई नै मां पळीयो छाछ गो।।[31]

इतना ही नहीं एक अन्य गीत में लड़की को अधिक दूर ससुराल

होने का भी दु:ख है। उसे डर है कि इतनी दूर होने पर हो सकता है, वह "सावण गी तीज" पर अपने पीहर न पहुंच सके। इसीलिए अपनी दूर ससुराल की शिकायत वह अपनी मां से करती है।

माता जी नै कहिज्यो, हाळी नै धीवड़ी क्यूं दीनी, क्यूं दीनी परदेस?[32]

ऐसी ही शंका उसकी सखियों ने भी की है। पर यहां उसकी भूमिका दूसरी हो जाती है। वह शिकायत सुनने वाली है। इसलिए वह सखियों से कहती है कि उसे अपने भाई पर पूर्ण विश्वास है। उसकी ससुराल चाहे कितनी ही दूर क्यों न हो, "सावण गी तीज" पर उसका भाई उसे अवश्य ही पीहर ले आयेगा। इसी विश्वास को बहिन ने इस गीत में अभिव्यक्त किया है :-

दूरां ए देसां गी बाई कमला, थानै ए कुण ल्यावै लो?
ल्यावै ए म्हारो जामण जायो वीर, मावड़ी मिलावै लो।।[33]

'सावन गी तीज' पर जहां लड़की ससुराल में रहकर दु:खी है, उसी प्रकार बेटी की अनुपस्थिति में माँ-बाप को भी सावन की तीज निरस लगती है और तीज के सभी आयोजन फीके लगते हैं। घर के प्राणियों की इस उदासी के प्रभाव से घर का बाग भी अछूता नहीं रहा है। इसी कारण अत्यधिक वर्षा के बाद भी घर का बाग सूखता जा रहा है। लेकिन जब भाई अपनी बहिन को लेकर आता है, तो इसी खुशी में बाग भी हरा होने लगता है।

बाई आई कांकड़, म्हारो बाग हिलोरा खावै ओ राज।
× × × × ×
बाई आई आंगणै, म्हारे बाग फूलां छायो ओ राज।[34]

उपर्युक्त गीत में घर के सदस्यों की उदासी के साथ बाग का "सूखना" एवं लड़की के घर आने से बाग के हरे होने के वर्णन से लोक साहित्य द्वारा जीवन की समग्रता के चित्रण का निर्वाह हुआ है।

लोक साहित्य में जीवन के एकांगी पक्ष का चित्रण नहीं होता उसमें जीवन अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ चित्रित होता है। यही कारण है कि इस गीत में बेटी के अभाव में उदास माता-पिता के साथ प्रकृति (बाग) भी उदास रहती है। उनकी प्रसन्नता के साथ प्रकृति भी आनंदित हो उठती है।

इस प्रकार सावन की तीज के गीतों में कहीं वर्षा का तो कहीं झूले पर झूलने का तो कहीं "नये घाघरे" एवं मेहन्दी रचाने का वर्णन है। सावन की तीज के गीतों में कृषि कार्यों का भी वर्णन हुआ है। इससे बिश्नोई सम्प्रदाय के कृषि प्रधान होने की बात प्रामाणित होती है। इन गीतों में एक ओर बिश्नोई समाज में

भाई-बहिन के प्रेम एवं विश्वास का वर्णन हुआ है तो दूसरी ओर भाई की प्रतीक्षरत बहिन का चित्रण है। इसके साथ ही त्यौहार पर लड़की द्वारा पीहर जाने की तीव्र इच्छा और न जा सकने पर मानसिक वेदना का भी वर्णन हुआ है। सावन की तीज के गीतों में अधिकतर नारी हृदय के विभिन्न भावों की ही अभिव्यक्त हुई है।



सन्दर्भ

❖ जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका)-डॉ हीरालाल माहेश्वरी, पृ 208

1. कपड़े एवं सूतली की बनी हुई गेंद।
2. 3 फुट लम्बी लकड़ी, जो आगे से मुड़ी रहती है।
3 विश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 129
4. विश्नोई लोकगीत '' पृ. 129
5. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 128
6 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 127
7. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 127
8. विश्नोई लोकगीत '' पृ 127
9. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 127
10 बिश्नोई लोकगीत '' पृ 127
11. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 130
12. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 128
13. केर की कच्ची कोंपलें
14 बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ. 137
15. विश्नोई लोकगीत '' पृ 136
16. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 134
17. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 134
18. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 135
19. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 135
20. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 135
21. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 140
22. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 140
23 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 134
24. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 139
25 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 138
26 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 140
27. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 141
28. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 142
29. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 142

30, बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 143
31. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 143
32. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 144
33 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 144
34. बिश्नोई लोकगीत " पृ 143

श्रम-परिहार के गीत

यह धरती कर्म-भूमि है। कर्म की महत्ता को यहां सभी विचारकों, महापुरुषों एवं अवतारों ने स्वीकार किया है। जाम्भोजी ने भी सबदवाणी में कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। मनुष्य स्वभावत: संगीत प्रिय प्राणी है। इसीलिए कर्म एवं संगीत का अटूट संबंध है। कर्म से संगीत जन्म लेता है और संगीत से कर्म को गति प्राप्त होती है। श्रम-परिहार के गीतों में कर्म एवं संगीत का यही संबंध प्रकट हुआ है। कर्म करते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें श्रम-परिहार के गीत कहते हैं। फसल काटते समय, अनाज मिलने की आशा से किसान का मन आनंद से भर जाता है और स्वत: ही उसके मुख से संगीत फूट पड़ता है। इन गीतों द्वारा श्रम की थकान कम हो जाती है और साथ ही कार्म की एक रसता समाप्त होती रहती है। परिश्रम करते समय गीत गाने से कृषक सहज हो जाता है और वह नये उत्साह से कर्म करता रहता है। इस तरह श्रम-परिहार के गीतों से एक ओर किसान के मन का उल्लास अभिव्यक्त होता है तो दूसरी ओर इन गीतों से वातावरण का सुनापन, कार्य की बोझिलता एवं समय की दीर्घता समाप्त हो जाती है।

'उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, अद्यम चाकरी' कहावत के अनुसार कृषि ही सर्वोत्तम व्यवसाय है। कृषि बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रमुख व्यवसाय है। जिस सम्प्रदाय का मुख्य व्यवसाय कृषि हो, उसका श्रम से बढ़कर कोई दूसरा त्यौहार नही होता। इसीलिए बिश्नोई कृषि कार्य को करते समय उतने ही प्रफुल्ल दिखाई देते हैं, जितने किसी त्यौहार को मनाते समय। बिश्नोई सम्प्रदाय में श्रम-परिहार के गीत *अधिकतर हाडी (रबी) की फसल काटते समय ही गाये जाते हैं।* ऐसे गीतों को "राम भणना" कहते हैं। ये गीत पुरुष वर्ग द्वारा गाये जाते हैं। एक व्यक्ति गीत की एक पंक्ति गाता है और शेष उसी को दोहराते हैं। गीत गाने वाले जिस उत्साह एवं आनंद से गीत गाते हैं, उसी उत्साह और वेग के साथ उनका कार्यसम्पन्न होता रहता है। ऐसे समय में उनकी "पांथ" भागती हुई दिखाई देती है।

खेती पर जीवन निर्भर रहने के कारण किसान खेती को ही अपना जीवन समझता है। खेती का प्रकृति के साथ अटूट सम्बन्ध है। इसलिए खेती करने वाले इस सम्प्रदाय को प्रकृति की अच्छी-बुरी देन को स्वीकार करना पड़ता है। इसी कारण प्रकृति के प्रत्येक रूप से उसका निकट का परिचय रहता है। इसी परिचय से प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन श्रम-परिहार के गीतों में हुआ है।

सावण उल्टा लोरे भाई रे।
जमी रे लिपटा लोरे भाई रे।
भादवो घन घोरे भाई रे।
मोर-पपहिया बोले रे भाई रे।
ऊंडी है बिरखा जोरे भाई रे।[1]

जेठ की तिलतिलाती धूप को सहन करते हुए किसान की आंखे आकाश में मंडराते हुए बादलों को देखती रहती हैं और उसका मन वर्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता रहता है। सच्चे मन से की गई प्रार्थना रंग लाती है और वर्षा से धरती की प्यास शान्त होने लगती है। खेत पानी से भर जाते हैं और किसान का मन-मयूर नाचने लगता है, इस स्थिति का चित्रण भी श्रम-परिहार के गीतों में हुआ है।

कालूड़ी कळावण गोंगा उमटी जीयो भल्ले।
ऊमट बूटा रूड़ो मेवड़ो जीयो भल्ले।
भरिया नाडी रे नाडिया जीयो भल्ले।
भरिया समंद तालाब जीयो भल्ले।
भरिया बावैजी रा खेतड़ा जीयो भल्ले।[2]

तेज धूप एवं गर्मी में भी किसान अपने खेत में फसल काटता रहता है। उसके शरीर से पसीना बहता रहता है और वह उसकी परवाह किये बिना ही "पांथ" में आगे बढ़ता रहता है। यह साधारण पसीना न होकर, श्रम पसीना होता है, जो अत्यन्त पवित्र होता है। इस पसीने से उत्पन्न वस्तुएं भी पवित्र होती हैं। इस तरह "श्रम एवं श्रृंगार का समन्वय, संघर्ष और सन्तोष का मेल, कर्म और आनंद की एकता ही कृषक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है।"[3]

कृषि प्रधान सम्प्रदाय होने के कारण विश्नोइयों का अधिकतर समय अपने खेतों में ही व्यतीत होता है। किसान या तो अपनी खेती का कार्य करता है या अपने पशुओं को सम्भालता है। घर एवं खेत से बाहर जाने के अवसर उसे कम ही मिलते रहे हैं। जब कभी भी उसे मेले आदि में जाने का अवसर मिला है, तो वह विशेष प्रकार से सज-धज कर जाता रहा है। आज के समय में यद्यपि

किसान के पास खेती के लिए ट्रेक्टर है, पर इससे पूर्व उसके पास ऊंट या बैलगाड़ी ही थी। उस समय वह ऊंट या बैलगाड़ी को सजाकर तथा स्वयं नयी पोशाक पहन कर मेले जाता रहा है। जीवन के इस पक्ष का वर्णन भी श्रम-परिहार के गीतों में हुआ है।

गण मण गाडोली रे सांवरिया।
बैल नागोरी रे सांवरिया।
गाडो भल जड़ती रो रे सांवरिया।
जड़ती भल पितल री रे सांवरिया।
फुलड़ियां चांदी री रे सांवरिया।
सिंवला सोने रा रे सांवरिया।
अब भल मेलै हालो नी रे सांवरिया।[4]

बैलगाडे एवं बैल की तरह ही आगे गीत में मेले जाने वाले किसान की पोशाक का वर्णन किया गया है।

दोय घड़ी ठहरो नी रे सांवरिया।
कूड़तो सीवण दयो नी रे सांवरिया।
कुड़तो रेसम रो रे सांवरिया।
बटण लगावण दयो नी रे सांवरिया।
बटण सोनै रा रे सांवरिया।[5]

विश्नोई सम्प्रदाय में मुकाम का मेला ही सब से अधिक प्रसिद्ध है। पशु मेले के रूप में नागौर का मेला प्रसिद्ध रहा है। गीत में इन्हीं मेलों में जाने का वर्णन किया गया है।

मेळो मालक रो रे सांवरिया।
मेळो जाम्भोजी रो रे सांवरिया।
मेळो नागौरी रे सांवरिया।[6]

श्रम-परिहार के गीतों में कहीं जीवन दर्शन का वर्णन है तो कहीं पौराणिक कथाओं की ओर भी संकेत किया गया है।

बालपणो दिन चार भाई रे।
आगै है बूढ़ापो तैयार भाई रे।
सावण उल्टा लोरे भाई रे।[7]

× × × × ×

सतजुग में हां पांडू पांच भाई रे।
अब फैल्या कळजुग भाई रे।

हिमालय गल्या पांडू पांच भाई रे।[8]

एक ही गीत में कहीं खेती में काम आने वाले बैलों का वर्णन है तो कहीं त्यौहार का वर्णन है और कहीं राम नाम का स्मरण करने का उपदेश है। इस तरह श्रम-परिहार के गीत जीवन की समग्रता लिये हुए हैं। इन गीतों में लोक संस्कृति अपनी समग्रता के साथ अभिव्यक्त होती है।श्रम-परिहार के गीतों से स्पष्ट है कि इन गीतों के गाते समय किसी निश्चित विषय का वर्णन करने का उद्देश्य नहीं रहता। गीत गाते समय उद्देश्य तो यही रहता है कि परिश्रम करने से जो थकान होती है, उसकी अनुभूति कम होती रहे। थकान कम होने से शरीर में स्फूर्ति आती रहती है और इससे आनंद की प्राप्ति होती रहती है। इसी आनंद के कारण काम में रुचि बढ़ती रहती है। आनंद के कारण किसान का मन-मयूर नाच उठता है और वह स्वत: कुछ गाने लगता है।

बिश्नोई सम्प्रदाय के श्रम-परिहार के गीतों में अधिकांश गीत ऐसे हैं, जिनमें कृषि कार्य से संबंधित बातों एवं वस्तुओं का ही वर्णन हुआ है। कुछ गीतों में जीवन से संबंधित अन्य विषय भी चित्रित हुए हैं। इससे लोकगीतकार की व्यापक अनुभूति का परिचय मिलता है। कृषकों द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्यों का वर्णन कम होने के कारण इन गीतों में कहीं सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का वर्णन है, तो कहीं सुख-दु:ख, आशा-निराशा का वर्णन है, कहीं कई जन्मों की तपस्या के बाद मानव योनि प्राप्ति का उल्लेख है और कहीं मानव जीवन को व्यर्थ में खोने की चेतावनी है और कहीं प्रकृति का सुन्दर चित्रण है। प्रकृति - चित्रण के गीत बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रकृति-प्रेम के परिचायक है। श्रम-परिहार के गीतों में जहां संसार की क्षण भंगुरता का वर्णन हुआ है, वहीं इनमें अराध्य देवी-देवताओं को सामान्य नर-नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

कान्ह काळो टोडे भाई रे।
मांडण पितळियो पिताण भाई रे।[9]

× × × × ×

दो घड़ी ठहरो नी रे सांवरिया।
रुकमण मेळै हाल सी रे सांवरिया।[10]

श्रम-परिहार के गीतों में बहुत ही कम शब्दों में जीवन के गहन अनुभव अभिव्यक्त हुए हैं। जिन बातों को अभिव्यक्त करने के लिए हमारे साहित्यकारों को अनेक पृष्ठ रंगने पड़ते हैं, उन्हीं बातों को लोक गायक गागर में सागर भरने में सफल हो गया है। श्रम-परिहार के गीतों के गायक के सामने विषय-वस्तु एवं शब्द

विधान की समस्या नहीं रही है। विषय उसके सामने हाथ जोड़े सदैव तैयार रहते हैं। एक विषय से स्वतः ही दूसरा विषय निकलता रहा है और काम के साथ-साथ गीत भी आगे बढ़ता रहता है। श्रम-परिहार के एक गीत में वह नदी के पानी के ढलने की बात करता है और साथ ही दिन के समाप्त होने एवं रात के आने का वर्णन करता है। रात के आने से उसे अपना काम बन्द करना पड़ेगा। इसीलिए रात को "बेरण" कहा गया है।

नदिये ढळक्यो नीर रे भाई
दिनड़ै रो भधाण रे भाई
पड़गी बेरण रात रे भाई।[11]

नीर, दिन और रात आदि के वर्णन के बाद वह तुरन्त दूसरे विषयों का वर्णन करता है।

पातळ पेटी नार रे भाई
पाणी री पिणीयार रे भाई।[12]

श्रृंगार के तुरन्त बाद श्रम-परिहार के गीतों का गायक संसार की क्षण भंगुरता एवं ईश्वर मिलन की इच्छा का वर्णन प्रारम्भ कर देता है।

जीवणों दिनड़ा चार रे भाई।
पल में मिलाय दे भगवान रे भाई।[13]

बिश्नोई सम्प्रदाय के इन श्रम-परिहार गीतों में जहां एक ओर अनेक विषय आये हैं वहां दूसरी ओर ये सभी विषय आपस में जुड़े हुए भी हैं। जैसे नदी का पानी, दिन एवं रात आदि विषय सभी आपस में जुड़े हुए हैं। नदी के पानी की तरह दिन ढल गया है और रात आ गई है। रात की बात के साथ नारी की पतली कमर की चर्चा करना और ऐसी ही कमरवाली नारी को पनिहारिन के रूप में चित्रित किया है। अन्त में आध्यात्मिकता का वर्णन करके गीतकार ने सबको जोड़ दिया है।

श्रम-परिहार के गीतों में जहां जीवन से संबंधित विभिन्न विषयों का वर्णन हुआ है, वहां इन गीतों को किस प्रकार से गाना है, यह प्रक्रिया भी स्पष्ट की गई है।

रामइयो भण ले रे भाई
एकण जंवले बोलो रे भाई
हालर बंधियो हालो रे भाई
गळले गहरो बोलो रे भाई
कड़िये मीठा बोलो रे भाई
दबियो मत बोलो रे भाई।[14]

अर्थात् राम भज ले रे भाई, एक साथ बोलो रे भाई, पंक्तिबद्ध

चलते रहो, पीछे जोर से बोलो, चरण को मीठा बोलो तथा दबकर मत बोलो रे भाई।

जीवन का जितना विशद वर्णन श्रम-परिहार के गीतों में हुआ है, उतना अन्यत्र मिलना कठिन है। ये गीत जीवन के सभी पक्षों को कम शब्दों में सार रूप में चित्रित करने में सफल हुए हैं।

इन गीतों में एक ओर बिश्नोई सम्प्रदाय की सांस्कृतिक विशेषताएं अभिव्यक्त हुई हैं तो दूसरीओर मानव संस्कृति की भी अनेक विशेषताएं चित्रित हुई हैं। श्रम-परिहार के गीत अलग-अलग जातियों के और अलग-अलग स्थानों के अलग-अलग हैं। जो जाति परिश्रम के जो-जो कार्य करती है, उनके गीतों में उन्हीं कार्यों एवं उन कार्यों से सम्बन्धित वस्तुओं का वर्णन रहता है। विभिन्न जातियों में रोपनी के गीत, चक्की चलाने एवं चरखा चलाने के गीत एवं कोल्हू चलाने आदि कई प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इन में से कुछ गीत स्त्रियां गाती हैं एवं कुछ पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय के अपने वैशिष्ट्य के कारण ही इनके श्रम-परिहार के गीत भी वैशिष्ट्य पूर्ण है। यही कारण है कि बिश्नोई सम्प्रदाय के श्रम-परिहार के समस्त गीत पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं और श्रम-परिहार के गीतों में रोपनी, चक्की चलाने, चरखा चलाने या कोल्हू चलाने के गीतों का अभाव है। इस तरह के गीतों का अभाव होना ही बिश्नोई सम्प्रदाय के श्रम-परिहार के गीतों का वैशिष्ट्य है।



सन्दर्भ

1. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 146-147
2. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 151
3. श्री कृष्णदास - लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या - पृ 61
4. बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ 150
5 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 150
6. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 151
7. बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 146
8 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 147-148
9 बिश्नोई लोकगीत '' पृ. 148
10. बिश्नोई लोकगीत '' पृ 150
11. लेखक के निजी संग्रह से
12 लेखक के निजी संग्रह से
13 लेखक के निजी संग्रह से
14 लेखक के निजी संग्रह से

बिश्नोई लोकगीतों का वैशिष्ट्य

प्रत्येक जाति एवं समाज की अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। ये समस्त विशेषताएँ उसके साहित्य में अभिव्यक्त होती रहती हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ जितनी विशुद्ध रूप में लोक साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं, उतनी शिष्ट साहित्य में नहीं होती। यही कारण है कि लोक साहित्य में, विशेष कर लोकगीतों में उस समाज का स्वरूप पूर्ण सच्चाई, अकृत्रिमता एवं आंचलिकता के साथ चित्रित होता है। इसी विशुद्ध अभिव्यक्ति के कारण लोक गीत मानवीय भावों के आधार पर एक होते हैं तथा अपनी आंचलिकता एवं जातीय विशेषताओं के कारण अपना अलग वैशिष्ट्य रखते हैं। बिश्नोई लोकगीतों में बिशनोई समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ सहज रूप में चित्रित हुई है।

विश्व की सभी जातियों एवं जनपदों के लोकगीतों के अध्ययन से यह बात प्रामाणित होती है कि लोकगीतों में आन्तरिक दृष्टि से पर्याप्त समानता है। रविन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो में उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है, जो मनुष्य में समान है[1]। एक समाज से दूसरे समाज के लोकगीतों में रीति-रिवाज, संस्कार, धार्मिक मान्यताओं, भाषा, आंचलिकता एवं जीवन व्यापार आदि तत्वो के कारण अन्तर आ जाता है। इसी अन्तर में उस समाज विशेष के लोकगीतों का स्वरूप एवं विशेषताएँ निहित रहती है।

बिश्नोई लोकगीतों की विशेषताएँ

भारत के विभिन्न सम्प्रदायों से अनेक प्रकार की समानताएँ होने के बाद भी बिश्नोई सम्प्रदाय का अपना अलग वैशिष्ट्य है और अपनी अलग पहचान है। बिश्नोई सम्प्रदाय अपने जिस प्रकाश से आलोकित है, वही प्रकाश उसके लोकगीतों में विकीर्ण हुआ है और इसी कारण बिश्नोई लोकगीतों का अन्य गीतों से साम्य होने पर भी अपना अलग वैशिष्ट्य है।

प्रत्येक समाज का पहनावा उसके रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास एवं भाषा आदि उसे वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। मानवीय भावनाओं के समान होने पर भी प्रत्येक जाति अपनी विशिष्टताओं के कारण अपनी अलग पहचान रखती है। इस अलग पहचान में ही उस जाति का अस्तित्व निहित रहता है। अपना पहनावा, रीति-रिवाज एवं सांस्कृतिक मूल्य जाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। विश्नोई सम्प्रदाय का भी अपना पहनावा है, उसके अपने रिति-रिवाज एवं सांस्कृतिक मूल्य हैं। आज के समय में इनमें जो कुछ परिवर्तन हुआ है, वह भी सम्प्रदाय की स्थिति के अनुसार ही हुआ है। बिश्नोई सम्प्रदाय के इस पहनावे[2] एवं रिति-रिवाजो[3] का वर्णन सम्प्रदाय के विभिन्न लोकगीतों में हुआ है।

यदि किसी भी प्रकार के रीति-रिवाज में परिवर्तन आ गया है या वह समाप्त हो गया है, तो उससे संबंधित गीत भी लुप्त प्राय: हो गया है। सम्प्रदाय के विवाह से संबंधित जितने भी गीत हैं, उनमें बनडे गीतो को छोड़कर शेष सभी गीत विभिन्न प्रकार की रस्मों से जुड़े हुए हैं। विवाह की विभिन्न रस्मों से संबंधित होने के कारण ये गीत सम्प्रदाय के स्वरूप को सुरक्षित रखने में सक्षम हैं। सम्प्रदाय के सामाजिक एवं धार्मिक स्वरूप को अपने कलेवर में संजोए रखने के कारण ही विश्नोई लोकगीतों का अपना वैशिष्ट्य है और इसी आधार पर वे अन्य गीतों से अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं।

विश्नोई सम्प्रदाय का मूल स्थल मरू प्रदेश होने के कारण विश्नोई लोकगीतों में मरू प्रदेशीय विशेषताएँ चित्रित हुई है। मरू प्रदेश में ऊंट का अपना विशिष्ट महत्त्व रहा है। यह यहां की भौगोलिक स्थिति के पूर्ण अनुकूल है और यहां के निवासियों के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसी कारण ऊंट को रेगिस्तान का जहाज कहते हैं। कृषि प्रधान जाति होने के कारण विश्नोइयों के लिए ऊंट का और भी अधिक महत्त्व रहा है। मरू प्रदेश में ऊंट के इसी महत्व के कारण बिश्नोई लोकगीतों में ऊंट (करवा) का वर्णन हुआ है।

चढण गो करवो म्हे ढाढया नै देस्या, म्हे धीनड़ गी बधाई द्यां।[4]

× × × × ×

इण बनड़ी गै हर के कोडे,
बनै म्हारै अजड़ा टोड पलाण्या ओ राज।[5]

कहीं बारात के लिए करवा मोलाया जा रहा है,[6] तो कही पत्नी अपने पति से एक बार करवा अपने पीहर की ओर लौटाने का आग्रह करती है[7] और कहीं सेडल मां से अपने ऊंट की मंगल कामना के लिए प्रार्थना की जाती है।[8]

बालू रेत के ऊंचे-ऊंचे धोरें मरू प्रदेश के सौन्दर्य के प्रतीक हैं। ग्रीष्म ऋतु में दिन में धोरे अत्यधिक गर्म हो जाते हैं और रात को उतने ही ठंडे हो जाते है। वर्षा ऋतु में हरियाली से युक्त घोरों का सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है, इन धोरो का वर्णन भी अनेक बिश्नोई लोकगीतों में हुआ है।

धोरे धामण औ बीरा मोक्ला जै ओ।[9]

× × × × ×

बीरो बाई रो धोरे-धोरे साथ मोरला।

मोरिया ए मां।।[10]

बाजरी,मूंग एवं मोठ आदि मरूप्रदेश की मुख्य फसले हैं। इनके वर्णन से भी मरू प्रदेशीय विशेषताएँ अभिव्यक्त हुई है।

लाखे सिटे ओ बीरा बाजरो जै ओ ।.........................

मूंगे मोठे ओ बीरा लावणी जै ओ।[11]

इस तरह ऊंट, धोरे, मरू प्रदेशीय फसलों और वृक्षों आदि के वर्णन से मरू प्रदेश का स्वरूप एवं विशेषताएँ ही प्रकट हुई है।

बिश्नोई सम्प्रदाय के विभिन्न त्यौहारों से जुड़ी हुई मान्यताएँ, उनके मानने की विधियां, सामाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के रिति-रिवाज, पहनावा, आचार -विचार एवं धार्मिक विश्वास आदि का चित्रण बिश्नोई लोक गीतों में हुआ है। इसी वर्णन से समाज का सामाजिक एवं धार्मिक स्वरूप चित्रित हुआ है।

परिवार में रहने वाले विभिन्न सदस्यों की परिवार में जैसी स्थिति रहती है, उसी से समाज का सामाजिक स्वरूप निर्मित होता है। बिश्नोई लोकगीतों में परिवार में रहने वाले विभिन्न सदस्यों की स्थिति, उनका आपसी व्यवहार तथा कार्यो की झलक प्रस्तुत की गई है। बेटे के जन्म पर पीळो,पोमचो, गुगरी एवं बधाई आदि गीत मुख्य रूप से गाये जाते हैं। विवाह की विभिन्न रस्मों से सम्बन्धित गीतों में भधावा, बनड़े, भात, तोरण और मृत्यु पर हरजस तथा भजन आदि गाये जाते हैं। संस्कार के इन गीतों द्वारा बिश्नोई समाज के सामाजिक जीवन की झांकी प्रकट हुई है। पुत्री की उपेक्षा पुत्र-जन्म पर होने वाली प्रसन्नता, सास-बहू का सम्बन्ध, ननद-भाभी की आपसी ईर्ष्या एवं प्रेम, भाई-बहिन का स्नेह तथा समाज में प्रचलित घूँघट प्रथा आदि बातें बिश्नोई लोकगीतों में सहज रूप से ही प्राप्त हो जाती है।

जाम्भोजी बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं और सम्प्रदाय में

उन्हे विष्णु के रूप में माना जाता है। धार्मिक दृष्टि से समाज में उनका सबसे अधिक महत्व है। इसी कारण अनेक लोकगीतों में जाम्भोजी की पूजा एवं उनसे संबंधित धार्मिक स्थानों का वर्णन हुआ है।

सालासर में वणी रे साथरी, मेळो वणयो रे मुकाम ।
मन्दिर जाम्भीजी गो म्हानै आछो लागै महाराज ।[12]

हरें वृक्षों को न काटना एवं जीवो पर दया करना बिश्नोई धर्म के दो प्रमुख नियम हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय के स्वरूप निर्माण में इन नियमों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वृक्ष-प्रेम और जीवों पर दया करने की भावना का वर्णन भी बिश्नोई लोकगीतों में हुआ है।[13]

तै रे खाती गा गजब गुजारयो, रस्ते गो वाडयो ए चानण रूंखड़ो ।
हाली जी बेसै, पाली जी बेसै, गऊ तो बेसै ए पूरी डेड सौ ।
चिड़ी रै चिड़ोला जा बिच बेसै, बेसै दादर मोरिया।[14]

वृक्षों की रक्षा के लिए प्राण न्यौछावर करने की प्रवृत्ति के कारण ही बिश्नोई सम्प्रदाय विश्व आकाश में अपनी अलग ही ज्योति विकीर्ण कर रहा है और उसकी यही प्रवृत्ति उसके लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई है। आज विश्व में पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या उत्पन्न हो रही है। इस समस्या का समाधान वृक्षों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। वृक्ष-प्रेम की भावना जन-जन में फैले, तभी वृक्षों की रक्षा हो सकती है। वृक्ष-प्रेम की प्रेरणा आज संसार, बिश्नोई सम्प्रदाय के वृक्ष-रक्षा के लिए किये गये बलिदान से ले सकता है। वृक्षों की रक्षा के लिए एक बड़ी संख्या में प्राण न्यौछावर करने की अपनी अद्‌भुत शक्ति के कारण ही बिश्नोई सम्प्रदाय विश्व फलक पर अपनी अनोखी चित्रकारी से संसार को चकित कर रहा है। यही चित्रकारी उसके लोकगीतों में चित्रित हुई है।

बिश्नोई लोकगीतों में जन्म, विवाह एवं मृत्यु से सम्बन्धित लोकगीतों में से सर्वाधिक लोकगीत विवाह से सम्बन्धित हैं। विवाह की कोई भी रस्म लोकगीतों के बिना पूर्ण नहीं होती। लड़की के विवाह में "डोरा करने" से लेकर कन्या की विदाई तक एवं लड़के के विवाह में बहू के घर में पहुंचने तक प्रत्येक रस्म के साथ गीतों की स्वर लहरियां थिरकती रहती है। गीतों से विवाह की प्रत्येक रस्म सजीली, मनभावन, सामाजिक एवं वाचाल बन जाती है। विवाह के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में कुछ गाली-गीत भी गाये जाते हैं। सामान्य जीवन में जहां गाली झगड़े का कारण बन जाती है और गाली खाना कायरता मानी जाती है। गाली देने वाला भी गंवार समझा जाता है। पर विवाह के

अवसर पर जो गाली गाई जाती है, वह प्रेम एवं आनंद का आधार होती है। इनको गाने एवं सुनने वाला आनन्द विभोर हो जाता है।

भारतीय समाज में जब से विवाह के अवसर पर लोकगीत गाये जाने प्रारम्भ हुए हैं, तभी से गालियों का प्रचलन रहा है। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसी दास ने रामचरित मानस में विवाह की पवित्र बेला पर गाली गाने क सजीव चित्रण किया है। जेवांनार के अवसर पर जब बारात घर के आंगन में खाना खाती है, तभी वहां उपस्थित समधियों के नाम ले-ले कर गाली गाने की प्रथा रही है। इसी का उल्लेख तुलसीदास ने किया है।

छः रस रुचिर विंजन बहुजाती, एक-एक रस अनगिनह भांति
जेंवत देंहि मधुर धुनि गारी, लें-लें नाम पुरुष अरु नारी।।

गाली गाने से विवाह का समय और अधिक सुहावना हो जाता है। इसी कारण गालियों को सुनकर अन्य बारातियों के साथ-साथ राजा दशरथ भी आनंदित हो रहे हैं और हंस रहे हैं।

समय सुहावनि गारि विराजा, हंसत राउ सुनि सहित समाजा।

हिन्दी के रीतिकालीन कवियों में केशव ने भी रामचन्द्रिका में विवाह के अवसर पर गाली गाने का वर्णन किया है।

अति सुन्दर नारी सब सुखकारी मंगलगारी देन लगी

आधुनिक काल के कवियों ने भी विवाह के अवसर पर गालियों का वर्णन किया है, लेकिन गाली गाने क सरस प्रसंग जितना लोकगीतों में अभिव्यक्त हुआ है, उतना साहित्यिक गीतों में नहीं।

बिश्नोई सम्प्रदाय में विवाह के समय "डोरा भधारने" के दिन से विधिवत गीत गाये जाने प्रारम्भ हो जाते हैं। इस दिन रात्रि में स्त्रियां "भधावा" गा कर विवाह वाले घर जाती हैं। इस गीत में परिवार की सुख-समृद्धि की कामना की जाती है। विवाह वाले घर पहुंचने के बाद स्त्रियां देर रात तक आंगन में बैठकर कुछ गीत गाती हैं। अपने घर जाने से पूर्व कुछ हंसी-मजाक करती हुई स्त्रियां वातावरण को अत्यधिक आनंदमय एवं सरस बना देती हैं, जिनमें गाली गीतों का प्रमुख योगदान रहता है। स्त्रियां बनड़े या बनड़ी की बहिनों एवं भाभियों के नाम ले लेकर गाली गाती हैं। इस समय जो बहिन या भाभी वहां उपस्थित होती है, उनको गाली न गाने पर वे कभी-कभी नाराज भी हो जाती हैं। कभी - कभी तो वे रूठ कर भी चली जाती हैं। इसलिए गीत गाने वाली स्त्रियां सभी बहिनों एवं भाभियों के नाम या जाति के साथ गाली गाती हैं। जैसे :-

म्हारै बनड़े गै भदवाणै में, नगरी में बाजा बाजै जी
रामू चढ़ग्यो डागलै, कांदा रोटी खावैजी
रामू गी गोरड़ी छाछळी, गधा चरावणा जावै जी
गधै ठोकी लातगी, आ सात गळैट्यां खावै जी।[15]

भाभी को गाली गायी जावे और बहिन को नहीं, ऐसे भला कैसे हो सकता है? विवाह के समय घर में बहिन का सर्वाधिक महत्त्व होता है, इसी कारण बहिन को भी गाली गायी जाती है :-

म्हारे बनड़ै गै भदवाणै में, नगरी में बाजा बाजै जी।
थूणै लारै नदी बगै, छाणो तिरीयो जावै जी।
आ रामी जाणै खोपरो, लारै नाठी जावै जी।[16]

बिश्नोई लोकगीतों में कई बार प्रशंसा एवं गाली साथ-साथ गायी जाती है।

रामू गै ब्याव में रामी बाई गो, सारो जी।
कोई सारो नी कोई वारो नी, आ बैठी माक्खा मारो जी।[17]

बिश्नोई लोकगीतों में यद्यपि सभी सम्बन्धियों को गाली गायी जाती है, पर इन गाली गीतों की सर्वाधिक शिकार भाभी ही हुई है।

ओरे मायली औरड़ी, जकै में पड़ियों मांचो जी,
थारी राजू गोरड़ी पाणी ढोवण गो ढांचो जी।[18]

भाभी को कभी पानी ढोने का "ढ़ांचा" कहा जाता है तो कभी उसे पैर साफ करने का "भाटा" कहा जाता है।

ओरे मायली औरड़ी, जकै में पड़ियो आटो जी
थारी लाला गोरड़ी पग धोवण गो भाटो जी।[19]

ऐसा नहीं होता कि विवाह के गीतों में भाभियों को सदैव गाली ही गायी जाती हो। कभी-कभी उनकी प्रशंसा भी की जाती है। किसी को गाली एवं किसी की प्रशंसा से गाली एवं प्रशंसा दोनों का ही महत्त्व बढ़ जाता है।

गळ में गुदड़ घात फलसै नाचै ए बहू रामू गी।
काठा कसणा बांध, पासा निरखै ए बहू राजू गी।[20]

विवाह के समय घर के सभी लोग प्रसन्न रहते हैं, पर सर्वाधिक प्रसन्नता बनड़े-बनड़ी की मां को होती है। विवाह में अन्य सम्बन्धियों के साथ-साथ मां के पीहर के लोग भी आते हैं, जिनमें उनके भाई-भाभी एवं भतीजे आदि प्रमुख होते हैं। मां को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही मां की भाभी को भी गाली गायी जाती है।

इस तह के गाली गीतों से जहां प्रसन्नता प्रकट की जाती है, वहीं ये गीत समानता एवं उदारता के द्योतक हैं।

बिश्नोई समाज में विवाह की प्रत्येक रस्म पर अलग-अलग गीत गाये जाते हैं। विभिन्न रस्मों से जुड़े हुए इन गीतों को देखकर यही प्रामाणित होता है कि विवाह की कोई भी रस्म लोकगीतों के बिना पूर्ण नहीं होती। उसी तरह विवाह की प्रत्येक रस्म पर गुड़ बांटा जाता है। विवाह के दिन तो कई रस्में सम्पन्न होती हैं और प्रत्येक रस्म पर अलग-अलग गुड़ बांटा जाता है। गुड़ बांटना भी प्रेम भावना का ही प्रतीक है। गुड़ बांटते समय भी गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में गाली गीत भी गाये जाते हैं। भाभी एवं बहनोई को गाली गायी जाती है।

राजू बीरै ने गुड़ द्यो रे घणेरो, लाम्बड़ती ने द्यो रे मती।
कण बिलमायो म्हारो मोडियो जती।[21]

गुड़ कम देने के कारण जहां एक ओर बनड़े की मां और बुआ को गाली द्वारा कोसा जाता है वहीं बहनोई को गुड़ न देने के लिए कहा जाता है। इस तरह चिढ़ाने के माध्यम से बहनोई के प्रति सम्मान ही प्रकट किया जाता है।

विवाह में दूल्हा सर्वप्रथम तोरण के समय ही अपनी ससुराल के द्वार पर पहुंचता है। वहीं विवाह में सम्मिलित सभी स्त्रियां सर्व प्रथम दुल्हे को निरखती है और निरखने का गीत गाती हैं। वहां आयी हुई सभी स्त्रियां दुल्हे के बारे में अपनी-अपनी राय व्यक्त करती हैं। कोई दुल्हे को सुन्दर बताती है, कोई काला तो कोई गौरा बताती है। तोरण की रस्म पूरी होने के बाद जवाई के निरखने के गीत के बाद वातावरण को और अधिक हंसी-मजाक मय बनाने के उद्देश्य से बारातियों एवं दुल्हे को भी गाली गायी जाती है।

सात सोपारी लाडा, सिंगोड़ा रो सटको।
काणा-काणा जानी ल्याओ लाडा, कांगो करसी मटको।।
सात सोपारी लाडा, सिंगोड़ा रो सटको।
बूढ़ा-बूढ़ा जानी ल्याओ लाडा, कांगो करसी गटको।।[22]

विवाह आनन्द और उत्साह का संस्कार है। इसमें सम्मिलित होने वाले सभी लोगों का हृदय आनन्द से सरोबोर रहता है। वर-वधू के सभी सम्बन्धी विवाह की प्रत्येक रस्म में आनंद और उत्साह के साथ भाग लेते हैं। शहरी जीवन तो एकाकीपन के घेरे में घिरता जा रहा है,वहां गांवों का जीवन आज भी एक दूसरे के साथ बंधा हुआ है। सभी लोग एक-दूसरे के कार्यों में भाग लेते हैं और सामाजिकता को प्रकट करते हैं। बिश्नोई समाज के अधिकांश लोग गांवों में ही

रहते हैं, जो थोड़े बहुत लोग शहरों में रहते भी हैं, उनमें भी अधिकांश लोग विवाह आदि का कार्य गांवों में ही सम्पन्न करते हैं। विवाह में पूरा गांव एक परिवार सा दिखाई देता है। अपने-अपने घरों की सफाई करना, नये-नये वस्त्र पहनना, सभी मेहमानों को अपना मेहमान समझना एवं उनकी सेवा करने में सभी गांव वाले अपना सौभाग्य समझते हैं एवं आनंदित होते हैं। ऐसी स्थिति में वर-वधू के सम्बन्धी आनंदित न हो, ऐसा असम्भव है। यही कारण है कि बिश्नोई लोकगीतों में भाभी एवं बहिन के साथ-साथ बहनोई, फूफे, मामी, मौसा एवं वधू के साथ आने वाली ओलंदी को भी गाली गायी जाती है। ओलंदी की अत्यधिक सेवा की जाती है। उसकी सुख-सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वधू को तो घर का सदस्य ही मान लिया जाता है पर ओलंदी तो मेहमान ही होती है। इसीलिए गाली गीतों द्वारा उसके प्रति अपने प्रेम को प्रकट किया जाता है और ओलंदी भी इन गीतों को सुनकर मन ही मन में आनंदित होती रहती है जैसे :-

म्हारी बहू भला नै आई, आ ओलंदी क्या नै आई?
आ पोटा रेड़णा आई, म्हारी बहू भला नै आई।
म्हारा टाबर खिलावण आई, म्हारी बहू भला नै आई।[23]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बिश्नोई सम्प्रदाय में गाली गीतों की एक दीर्घ परम्परा रही है और इन गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। इन गाली गीतों से एक ओर सामाजिकता एवं आपसी प्रेम भाव प्रकट हुआ है तो दूसरी ओर ये वातावरण को हंसी माजाक युक्त बनाने में भी सहायक हुए हैं। गाली गीत बिश्नोई समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों के रक्षक हैं और साथ ही ये परिवार के विभिन्न सदस्यों के वैशिष्ट्य को भी अभिव्यक्त करते हैं।

बिश्नोई लोकगीतों में ऐसा कोई भी गीत नहीं है, जो किसी अवसर विशेष के साथ न जुड़ा हुआ हो। सभी गीत किसी न किसी संस्कार, त्यौहार एवं उत्सव से संबंधित हैं। इससे लोकगीतों के साथ-साथ समाज में विशेष संस्कार, त्यौहार एवं उत्सव का महत्त्व भी प्रतिपादित होता है। अन्य लोकगीतों की तरह बिश्नोई लोकगीत पेशेवर गायकों द्वारा नहीं गाये जाते। बिश्नोई समाज में इस तरह के गायक नहीं है। इन गीतों को गानें वाले समाज के ही स्त्री-पुरूष हैं, जो विशेष अवसरों पर उनसें संबंधित गीत गाते हैं। पेशेवर गायकों द्वारा गीत गानें से उनमें कृत्रिमता का समावेश होना प्रारम्भ हो जाता है और वे जीवन की वास्तविकता से दूर हट जाते हैं। पेशवर गायको के कंठो से दूर रहने के कारण ही बिश्नोई लोकगीत आज भी जीवन की वास्तविकता से युक्त हैं।

बिश्नोई लोकगीतों की देन

प्रत्येक जाति एवं जनपद के लोकगीतों का कुछ अपना वैशिष्ट्य होता है। इसी वैशिष्ट्य से लोक साहित्य की सम्पदा में वृद्धि होती रहती है और इसी के कारण उसका स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है। बिश्नोई लोकगीतों में भी लोकगीतों की सामान्य विशेषताओं के साथ-साथ कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं, जिनसे वे अलग रंग का प्रकाश फैला रहे हैं और अपने इसी विशिष्ट रंग के प्रकाश से भारतीय लोक साहित्य के प्रकाश को रंग-बिरंगा बनाने में सहयोग दे रहे हैं।

बिश्नोई लोकगीतों में होली के गीतों का अपना अलग ही महत्त्व है। बिश्नोई सम्प्रदाय के होली गीतों में दड़ी खेलने का जो वर्णन हुआ है, उसी से इन गीतों का अपना वैशिष्ट्य है।फाल्गुन के महिने में आने वाला यह त्यौहार आनंद व मस्ती का त्यौहार होता है। होली के दिनों में सभी का मन उमंग एवं मादकता से लबालब भरा रहता है। इसी उमंग और मादकता को बिश्नोई युवक दड़ी खेलकर तथा युवतियां गीत गाकर अभिव्यक्त करती रहती हैं। गांव के बीच में या गांव के बाहर किसी खुली जगह में युवक होली से दस-पन्द्रह दिन पूर्व दड़ी खेलना प्रारम्भ कर देते हैं और युवतियाँ गांव के मध्य भाग में ही किसी चौकी पर बैठकर होली से संबंधित गीत गाती रहती हैं। होली के इन गीतों में दड़ी खेलने से संबंधित अनेक गीत गाये जाते हैं, जिनमें बिश्नोई लोक जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति निहित रहती है। इस तरह के गीतों से ही बिश्नोई लोकगीतों का अपना अलग विशिष्ट्य है और ऐसे गीत ही लोक साहित्य की विपुल सम्पदा में वृद्धि करने में सहायक हो रहें हैं।

विभिन्न प्रातों एंव जातियों के होली-गीतों में अधिकांश गीत रंग खेलने से संबंधित हैं। रंग खेलने के गीतों में विभिन्न देवी-देवताओं द्वारा रंग खेलने का वर्णन भी हुआ है। इसमें राधा और कृष्ण द्वारा रंग खेलने का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। सांसारिक संबंधों में देवर-भाभी, जीजा-साली, जीजा-सलहज एवं ननदोई-भाभी आदि के द्वारा रंग खेलने का वर्णन भी लोकगीतों में हुआ है। इन गीतों द्वारा लोक गायको ने अपनी श्रृंगारिक भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। होली गीतों में रंग खेलने से संबंधित गीतों के अतिरिक्त अन्य गीत बहुत कम है। रंग खेलने के गीतों से ही होली-गीत इतनें रंगीन एवं उल्लास मय बने हुए हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय के होली गीतों में रंग खेलने से संबंधित एक भी गीत नहीं है। फिर भी ये गीत आनंद एवं मस्ती से युक्त हैं। अपने आप को प्रहलाद-पंथी मानने के कारण बिश्नोई होली के अगले दिन रंग नही खेलते। रंग न खेलने के कारण ही बिश्नोई

लोकगीतों में रंग खेलने से संबंधित कोई भी गीत नहीं है। रंग खेलने से संबंधित गीतों का न होना सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यता के अनुकूल है। इस तरह बिश्नोई सम्प्रदाय के होली-गीतों में एक ओर लोक जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है तो दूसरी ओर वे लोक-साहित्य के इस विस्तृत कैनवास पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाये हुये हैं। बिश्नोई लोकगीतों की यह विशिष्ट पहचान ही उसकी लोक साहित्य को अमूल्य देन है। लोक साहित्य के विकास में ऐसे बिश्नोई लोकगीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है।

प्रायः सभी जातियों के सावन की तीज के गीतों में नायिका के वियोग का वर्णन हुआ है। इन वियोगात्मक गीतों द्वारा सावन के सारे हर्षोल्लास दुख के हल्के आवरण से ढ़क जाते हैं। ऐसे गीत इस त्यौहार के सुख में पैबन्द का कार्य करते हैं। बिश्नोई साम्प्रदाय के सावन की तीज के गीतों में वियोगात्मक गीतों का *अभाव है। इससे सावन की तीज का सुखमय वातावरण इन गीतों द्वारा और अधिक* सुखमय बनता रहता है। कृषि प्रधान जाति होने के कारण बिश्नोई इस महिने में अपने खेतों में ही कार्य करते रहते है। अतः उनका इस अवसर पर कहीं बाहर जाना संभव ही नही होता। इसी कारण किसी भी स्त्री के सामने वियोग की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती। व्यावहारिक जीवन में वियोगात्मक स्थिति के न रहने पर ही सावन *की तीज के गीतों में वियोगात्मक गीतों का अभाव रहा है, जो बहुत स्वाभाविक है।* सावन की तीज के गीतों में वियोगात्मक गीतों का न होना ही बिश्नोई लोकगीतों का वैशिष्ट्य है और इन गीतों का अभाव होना ही लोक साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव को दूर करने में सहायक होना है।

बारहमासा वर्णन में वर्ष के बारह महीनों का वर्णन किया जाता है। इसमें प्रायः *नायिका के विरहजन्य दुखों का ही वर्णन किया जाता रहा है।* बारहमासा में प्रत्येक माह की स्थान विशेष की प्राकृतिक विशेषताओं के साथ-साथ विरहिणी के हर महीने में परिवर्तित-वियोग का चित्रिण किया जाता रहा है। बारहमासा द्वारा विरह वर्णन की परम्परा लोकगीतों की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। हिन्दी साहित्य में भी बारहमासा वर्णन की एक दीर्घ परम्परा पायी जाती है। *जायसी ने नागमती के वियोग वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है।* जायसी के बाद हिन्दी के अनेक कवियों ने बारहमासा का सफल प्रयोग अपने काव्य में किया है। साहित्य में बारहमासा की परम्परा का विकास लोक साहित्या के माध्यम से ही हुआ है।[24]

लोक साहित्य में बारहमासा किस माह से प्रारम्भ हो, इस संबध

में कोई शास्त्रीय नियम नहीं है। अधिकतर लोकगीतों में आषाढ़ से बारमासा प्रारम्भ करने की एक परम्परा रही है। वैसे अन्य महीनों से प्रारम्भ बारहमासे भी लोकगीतों में मिलते हैं। भोजपुरी एवं अवधी में आषाढ़ से प्रारम्भ बारहमासें मिलते हैं।[25] हरियाणा के लोकगीतों में आषाढ़ के साथ-साथ चैत्र एवं जेठ से प्रारम्भ बारहमासें भी हैं।[26]

बिश्नोई लोकगीतों में उपलब्ध बारहमासा अपना अलग वैशिष्ट्य लिए हुए है। यह बारहमासा किसी भी वियोगिनी के वियोग से संबंधित नहीं है। इसमें विशुद्ध रूप से हर माह की प्राकृतिक विशेषताओ का चित्रण हुआ है।

आषाढ़ रो ओ बीरा दूजोड़ो मास जे ओ
हाळी हळ ओ बीरा जोड़िया जै ओ
सावणीय रो ओ बीरा तीजोड़ो मास जै ओ
धोरे धामण ओ बीरा मोकला जै ओ।[27]

कृषि प्रधान जाति होने के कारण बिश्नोई बारहमासा अधिकतर फसलों की बुवाई, सिंचाई, निराई एवं कटाई आदि कार्यों से सम्बन्धित है।

आसोज रो ओ बीरा पांचूड़ो मास जै ओ
बेलड़िया ओ बीरा फळ लागिया जै ओ
कातकड़ी रो ओ बीरा छटोड़ो मास जै ओ
लाखै सीटै ओ बीरा बाजरो जै ओ।[28]

कृषि के साथ - साथ पशु-पालन भी बिश्नोई जाति का प्रिय व्यवसाय रहा है। इसी कारण यह "बारहमास" पशु-पालन सम्बन्धी अनेक विशेषताओं से युक्त है।

भादूड़ै रो ओ बीरो चौथोड़ो मास जै ओ
गेहरा बाजै ओ बीरा बिलोवणा जै ओ।[29]

बिश्नोई सम्प्रदाय के लोकगीतों में यह "बारहमासा" भात का गीत है। राजस्थानी लोकगीतों में भी यह गीत है पर वहां बारह महीनों का वर्णन नहीं है। राजस्थानी भात-गीत में केवल सात महीनों का ही वर्णन है और उसके बाद गीत में बहिन द्वारा भाई को "निवतण" एवं भाई द्वारा बहिन की बेटी के विवाह के समय भात भरने का वर्णन है। इस तरह राजस्थानी भात-गीत में भाई-बहिन के अटूट प्रेम के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के अनेक तत्वों का चित्रण हुआ है।[30] बिश्नोई भात-गीत एक ओर राजस्थानी भात-गीत की समस्त विशेषताओं से युक्त है तो दूसरी ओर इसमें बारह महीनों का भी वर्णन है। यह वर्णन भी अपनी जातीय

विशेषताओं के अनुसार हुआ है। इसी से यह भात-गीत एवं इसमें वर्णित "बारहमासा" लोक साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है। अन्य विशेषताओं के साथ-साथ यह बारहमासा सामान्य बारहमासों की तरह आषाढ़ से प्रारम्भ न होकर जेठ से प्रारम्भ हुआ है।

जेठुड़ो ओ बीरा, पहलड़ो मास जै ओ
मिरगा पीवा ओ बीरा घालिया जै ओ।[31]

यद्यपि हरियाणवी लोकगीतों में वर्णित एक "बारहमासा" जेठ से भी प्रारम्भ है, पर वह बारहमासा बिश्नोई लोकगीतों में उपलब्ध बारहमासे से प्रभावित दिखाई देता है। इस तरह यह बारहमासा हिन्दी काव्य में वर्णित बारहमासा एवं लोकगीतों में वर्णित "बारहमासा" परम्परा से हटकर है। बारहमासा की प्रचलित परम्परा से अलग होने के कारण ही यह "बारहमासा" अपना अलग वैशिष्ट्य रखता है। इसी वैशिष्ट्य के कारण इसका लोक साहित्य के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान माना जा सकता है।

बिश्नोई लोकगीतों में कला का स्वरूप

लोकगीत छन्द के बन्धन से मुक्त रहते हैं। स्वतंत्र वातावरण में ही लोकगीतों का जन्म होता है और उसी में उनका विकास होता है। जिस मौज-मस्ती एवं उन्मुक्त वातावरण में लोकगीतों का जन्म होता है, वहां बन्धन का पूर्ण अभाव रहता है। बिश्नोई लोकगीत भी छन्द के बन्धन से मुक्त हैं, पर लय से बन्धे हुए हैं। लय की दृष्टि से ही मात्राओं में परिवर्तन होता रहा है। सभी गीत अलग-अलग लय में गाये जाते हैं। इन लोकगीतों में प्रयुक्त लय को किसी शास्त्रीय नियमों में बांधना कठिन है। अपनी लय के कारण ही ये गीत अपना अलग वैशिष्ट्य बनाये हुए हैं। अधिकांश बिश्नोई लोकगीत तुकान्त है।

लोकगीत भावों की सहज अभिव्यक्ति है। कविता में मानवीय भावों की अभिव्यक्ति विशिष्ट नियमों के माध्यम से होती है, जब कि लोकगीतों में लोकगीतकार पूर्ण स्वच्छन्द रूप से भावों की अभिव्यक्ति करता है। कविता में अलंकारों का प्रयोग भी कई बार सप्रयास होता है पर लोकगीतों में लोकगीतकार भाव-प्रवाह में इतना तल्लीन रहता है कि उसका ध्यान न तो कलात्मक पक्ष की ओर जाता है और न ही उसे इसका ज्ञान होता है। कलात्मक पक्ष की इतनी अनदेखी करने के उपरान्त भी लोकगीत कलात्मक पक्ष के अनेक तत्वों से परिपूर्ण होते हैं। इसी आधार पर लोकगीतों में अलंकारों का प्रयोग भी हो जाता है पर यह प्रयोग बिना प्रयास और बिना ज्ञान के होता है।

विश्नोई लोकगीतों में भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण अधिकांश गीत ऐसे हैं, जिनमें अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ है। जिन गीतों में अलंकार आये हैं, वे भी स्वत: ही आये हैं। लोकगीतकार के अनजानेपन से आये हुए अलंकार अपने स्वाभाविक सौन्दर्य से युक्त हैं। यही कारण है कि ऐसे गीत अन्य गीतों की तुलना में अधिक सरस एवं मार्मिक हैं। विश्नोई लोकगीतों में अन्य अलंकारों की तुलना में उपमा अलंकार का प्रयोग अधिक हुआ है। कविता में प्रयुक्त उपमाएं कवि परम्परा से युक्त होने के कारण प्राय: बासी एवं अरूचिकर होती है पर विश्नोई लोकगीतों में आयी हुई उपमाएँ सादगी एवं मौलिकता से युक्त है। विवाह के एक गीत में परिवार के सभी सदस्यों को विभिन्न उपमाओं से चित्रित किया है।[32] एक अन्य गीत में प्रेममय गाली गाते समय किसी की पत्नी को "मौत्यां चीचलो हीरो जी" तो किसी की गौरी को "पाणी ढ़ोवण गो ढ़ांचो" और किसी की पत्नी को "पग धोवण गो भाटो" की उपमा से चित्रित किया है।[33] इसी तरह एक गीत में बनड़े एवं बनड़ी के गुणों को विभिन्न उपमाओं से स्पष्ट किया है।

लाडलो म्हारो सावणीय रो लोर, लाडली म्हारी आभा बिजळी जै।[34]

विश्नोई लोकगीतों में जो उपमान आये हैं, वे सभी ग्रामीण जीवन से संबंधित है। इनसे एक ओर लोकगीतों के भाव-सौन्दर्य में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर इनके माध्यम से ग्राम्य जीवन की विशेषताएँ भी प्रकट हुई है।

अनुप्रास अलंकार का प्रयोग तो प्राय: सभी गीतों में हुआ है। कुछ ऐसे गीत भी है, जिनकी प्राय: सभी पंक्तियों में अनुप्रास की छटा देखी जा सकती है।

चौकी चरखो ढ़ाल चक्कर चलावै दादी लाडलै गी।[35]

× × × × ×

सात सोपारी लाडा सिंगोड़ा रो सटको।[36]

कुछ गीतों में अतिशयोक्ति अलंकार का भी प्रयोग हुआ है, पर ऐसे गीतों की संख्या बहुत कम है।

बारां कोसा गी बांधी आवड़ी।[37]

× × × × ×

मण पिस्यो, मण पोयो, मण रो रांध्यो खीचड़ो।[38]

विश्नोई लोकगीतों में उक्ति-वैचित्र्य का भी बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है। यह उक्ति वैचित्र्य पूर्ण स्वाभाविक रूप से आया है।होली के एक गीत में बहिन सुसराल में भाई की प्रतीक्षा कर रही है। भाई के आने पर बहिन बहुत प्रसन्न

होती है। वह भाई से कुशल-क्षेम पूछती है और उसे स्वादिष्ट भोजन खिलाती है। भाई की सेवा से निवृत्त होने के बाद भी जब उसे भाई की ओर से लायी हुई कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं होती, तो उसे बड़ी निराशा होती है। पूछना भी उचित नहीं लगता पर बिना पूछ रहा भी नहीं जाता। इसी से वह कुढ़ती है। इतना कुछ होने पर भी बहिन अपने भाई को किसी भी स्थिति में दूसरो के सामने अपमानित नहीं करना चाहती। इसीलिए वह पड़ौसन के सामने तो अपने भाई की बहुत प्रशंसा करती है पर भाई को खाली हाथ आने का अहसास भी करवा देती है। इसके लिए बहिन ने जिस कथन का सहारा लिया है, वह स्वाभाविक एवं श्रेष्ठ उक्ति वैचित्र्य ही कहा जा सकता है।

वीरा लाल पडोसण पूछे रे, थारो बीरो काईं-काईं लायो।
बाई मेहेंदी गो कोथलियो रे, मांय कसुम्बा कांजळी।
बाई पहरण नै पोटली रे, ऊपर बोरंग चूंदड़ी।
अतरी करी बीरा सोभा रे, लायो न टकै गी कांजळी।[39]

लोकगीत भावों की सहज अभिव्यक्ति है। भावों की सहज अभिव्यक्ति में भाषा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। सभी प्रकार के लोकगीतों में लोकभाषा का प्रयोग होता है। लोक आत्मा को लोकभाषा में प्रकट करना लोकगीतों की मुख्य विशेषता है। लोकभाषा के प्रयुक्त करने के कारण ही प्रत्येक जाति एवं जनपद के लोकगीतों में भावों की समानता होने पर भी उनका कलेवर अलग दिखायी देता है। इसी अलग कलेवर में ही जाति विशेष के लोकगीतों का वैशिष्ट्य निहित रहता है।

बिश्नोई लोकगीतों का भाषा की दृष्टि से भी अपना अलग वैशिष्ट्य है। बिश्नोई धर्म का प्रवर्तन एवं विकास स्थल राजस्थान होने के कारण, बिश्नोई लोकगीतों में राजस्थानी भाषा का ही प्रयोग हुआ है। राजस्थानी भाषा की सामान्य शब्दावली के साथ-साथ बिश्नोई लोकगीतों में बिश्नोई समाज में प्रचलित ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन्हीं शब्दों के द्वारा इन गीतों में जातीयता का रंग गहरा हो गया है। डागळो, भगत, तीवळ, पोटा, खुंवे, गुचळकी एवं बाटकियो[40] आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। राजस्थानी भाषा सम्पदा की वृद्धि में ऐसे शब्दों का अमूल्य योगदान माना जा सकता है। बिश्नोई लोकगीतों की भाषा से स्पष्ट है कि इनमें अरबी एवं फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। इस क्षेत्र पर इतने अधिक मुस्लिम आक्रमण होने के बाद भी अपने आपको उनके प्रभाव से मुक्त रखना, बिश्नोई समाज की बहुत बड़ी विशेषता है। इस संबंध में डॉ. कमलारत्नम ने लिखा

है "यह तथ्य विष्णोइयों के स्वाभिमान और उनकी चारित्रिक दृढ़ता का स्पष्ट प्रमाण है।[41] दूसरी ओर आधुनिक लोकगीतों में अंग्रेजी के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना समाज के विकास एवं आधुनिकता का द्योतक है। डलेवर, सिंगल, मोटर, टेरालीन एवं साईकिल आदि शब्दों के प्रयोग से एक ओर बिश्नोई समाज में प्रचलित शब्दावली में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर इनसे लोकगीतों में नवीनता एवं आधुनिकता झलकती है।

बिश्नोई लोकगीतों पर युग का प्रभाव एवं उनका भविष्य

लोकगीत समय के साथ चलते हैं। वे अपने युग की विचार धारा, मूल्य एवं भाषा आदि की समस्त विशेषताओं को अपने में समेटे रहते हैं। आज आवागमन के तथा दूर संचार के तीव्र साधनों के कारण कोई भी समाज युगीन प्रभाव से अछूता नहीं है। बिश्नोई समाज द्वारा भी आधुनिक साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। इसी कारण वह युगीन प्रभाव से प्रभावित है। यह प्रभाव लोकगीतों पर भी पड़ा है। आधुनिक समय के लोकगीत आज की विशेषताओं से युक्त हैं। युगीन विशेषताओं का प्रभाव अधिकतर "बनड़े" गीतों पर पड़ा है। "बनड़े" गीतों में आये हुए डलेवर, सिंगल, मोटर, टेरालीन, साईकिल एवं फोटू आदि शब्द युगीन प्रभाव को ही अभिव्यक्त करते हैं। जन्म एवं मेले के गीतों में भी कुछ इस प्रकार के गीत हैं, जो आधुनिक विचार धारा से प्रभावित हैं।

आज रेडियो, सिनेमा एवं टेलीविजन का प्रभाव समाज में अत्यधिक है।इनके प्रभाव से बिश्नोई समाज भी अछूता नहीं है। इनके प्रभाव से लोकगीतों के प्रति समाज की रुचि कम होती जा रही है। विभिन्न उत्सवों में लोगों की लोकगीत सुनने की अपेक्षा टेलीविजन देखने या टेपरिकॉर्ड से फिल्मी गाने सुनने की रुची बढ़ती जा रही है।

श्रोताओं की इस रूची परिवर्तन के कारण ही लोकगीत गाने में गायिकाओं का उत्साह कम होता जा रहा है। इस रूचि परिवर्तन का यह प्रभाव पड़ा है कि आज बिश्नोई समाज में पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा नयी पीढ़ी को बहुत ही कम गीत कंठस्थ है। इस स्थिति को देखते हुए यह लगता है कि बिश्नोई समाज में लोकगीतों का प्रयोग कम होता जा रहा है।

बिश्नोई समाज कृषि प्रधान समाज है। कृषि के विकास के कारण आज अनेक बिश्नोइयों ने गांवों की अपेक्षा ढ़ाणियों में रहना प्रारम्भ कर दिया है। ढ़ाणियों में रहने से कृषि की दृष्टि से चाहे जितनी सुविधा प्राप्त हो रही हो पर लोकगीतों पर इसका प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ रहा है। दूर-दूर रहने के कारण एक

स्थान पर एकत्रित होना कठिन होता जा रहा है और इसी से विभिन्न अवसरों पर गीत गाने की परम्परा कम होती जा रही है। ढ़ाणी की व्यवस्था का सबसे अधिक प्रभाव त्यौहारों के गीतों पर पड़ा है। वैसे भी इस अर्थ प्रधान युग में देश में त्यौहारों का महत्त्व कम होता जा रहा है। विश्नोई समाज में भी त्यौहार पहले की तरह धूम-धाम से नहीं मनाये जा रहे हैं। इसी कारण त्यौहारों से संबंधित लोकगीतों का गाया जाना कम होता जा रहा है। लोकगीतों के प्रयोग के अभाव में नयी पीढ़ी भी उन्हें धीरे-धीरे विस्मृत करती जा रही है। इस अर्थ प्रधान युग में मानव का प्रेम भाव भी कम होता जा रहा है। प्रेम भाव के कम होने का सीधा प्रभाव लोकगीतों पर पड़ रहा है। प्रेम-भाव के कम होने से लोगों का आपस में मिलना-जुलना भी कम होता जा रहा है। इसी कारण विशेष उत्सव के समय भी स्त्रियां एक स्थान पर कम ही एकत्रित हो पाती हैं। इसी से उत्सव से संबंधित गीतों का गाया जाना कम होता जा रहा है। बिश्नोई युवक-युवतियों द्वारा सरकारी नौकरी करने का प्रभाव भी लोकगीतों पर पड़ रहा है।

आज मशीनी युग है। इसमें अधिकतर कार्य मशीनों द्वारा ही होते हैं। कृषि से संबंधित अनेक कार्य भी मशीनों द्वारा हो रहे हैं। फसल की कटाई भी मशीनों से ही हो रही है। इसी से श्रम-परिहार के गीतों का प्रयोग भी कम होता जा रहा है।

लोकगीत हमारी संस्कृति के रक्षक है। अत: इनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। आज बिश्नोई समाज में विभिन्न कारणों से जिस गति से लोकगीतों का प्रयोग कम होता जा रहा है, उससे लोकगीतों का अस्तित्व ही संदिग्ध होता जा रहा है। बिश्नोई समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व है कि वे इस क्षेत्र में ऐसा प्रयास करें, जिससे समाज की इस अमूल्य धरोहर की रक्षा हो सके। महिला समाज को चाहिये कि वे अधिक से अधिक लोकगीतों को कंठस्थ करके आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करती रहे।



सन्दर्भ

1. मार्डन रिव्यू सितम्बर 1924
2. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 39
3. बिश्नोई लोकगीत ,, पृ. 39, 51, 60, 66, 97
4. बिश्नोई लोकगीत ,, पृ. 29
5. बिश्नोई लोकगीत ,, पृ. 36

6. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ 44
7. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 88
8 बिश्नोई लोकगीत " पृ 124
9 बिश्नोई लोकगीत " पृ 65
10 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 86
11. बिश्नोई लोकगीत " पृ 66
12. बिश्नोई लोकगीत " पृ 111
13. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 78, 112
14. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 73, 74
15 बिश्नोई लोकगीत " पृ 37
16. बिश्नोई लोकगीत " पृ 37
17. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 38
18. बिश्नोई लोकगीत " पृ 38, 39
19 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 39
20. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 39
21. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 40
22. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 84
23 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 94
24. भारतीय लोक साहित्य-श्याम परमार, पृ. 111
25. लोकगीतों की सास्कृतिक पृष्ठभूमि-डॉ विद्या चौहान, पृ 240-242
26. हरियाणा के लोकगीत (सांस्कृतिक मूल्यांकन)-डॉ भीम सिंह, पृ 108, 109
27. बिश्नोई लोकगीत-डॉ बनवारी लाल सहू, पृ 65
28. बिश्नोई लोकगीत " पृ 65, 66
29. बिश्नोई लोकगीत " पृ 65
30 लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा-डॉ. मनोहरलाल शर्मा, पृ 98
31 बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, पृ. 65
32 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 42, 43
33 बिश्नोई लोकगीत " पृ. 38, 39
34. बिश्नोई लोकगीत " पृ 52
35. बिश्नोई लोकगीत " पृ 39
36. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 84
37. बिश्नोई लोकगीत " पृ. 132
38. बिश्नोई लोकगीत " पृ 132
39. बिश्नोई लोकगीत " पृ 127
40. डागळो-सीढ़ी, भगत-समय, तीवळ-स्त्री की पूरी पोशाक,
पोटा-गोबर, खुंवे-कन्धा, गुचळकी-डूबकी, बाटकियो-कटोरा।
41. बिश्नोई लोकगीत-डॉ. बनवारी लाल सहू, (भूमिका) पृ ठ